

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180544

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—831—5-8-74—15,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 483/P89T Accession No. G.H 2801

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

8 SEP 1967

234

~~OCT 1987 78~~

11 Jan 1968

साहित्य-प्रकाशन

तट के बंधन

—मौलिक सामाजिक उपन्यास—



विष्णु प्रभाकर

पुस्तक भेंट के निमित्त है

१९६३

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

तीसरा संस्करण : १९६३

मूल्य

सजिल्द : साढे तीन रुपये

अजिल्द : अढाई रुपये

५

दीपक
दी प्रिन्टर्स,
दिल्ली

तट के बंधन

एक

सोपाया कि मालती कमरे में नहीं है। ऊपर पहुँची, वहाँ भी नहीं थी। अन्तर का द्वन्द्व तीव्र हो आया, तभी ललिता सामने आ गई। उससे पूछा, “मालती कहां है ?”

“जीजी तिमंजिले पर बैठी रो रही है।”

“रो रही है ?” मां एकाएक भभक उठी, ‘क्या हुआ कलमुंही को ! जब देखो तब रोना, रोना...रोना...घर में क्या कोई बचा नहीं ! सब मर गए !”

इस प्रकार बकती-भकती वह तेजी से पौड़ियां चढ़ने लगी, मानो जिस आवेग को अबतक जी-जान से रोकने का प्रयत्न कर रही थी, वह तनिक-सी ठेस पाकर फूट आया। ललिता ने मां को देखा। आंखों से आंसू की दो बूंदें भर गई। पता नहीं, मां के लिए या जीजी के लिए। दो क्षण बाद जब वह पीछे-पीछे ऊपर पहुँची तो सहसा जीने में ही ठिठक जाना पड़ा। देखा, मां जीजी को छाती में भरे रो रही है। कह रही है, “तू कहे या न कहे, बात जो है मैं जानती हूँ। जानबूझकर थोड़े ही नाराज होती हूँ ! काम बिगड़ता है तो गुस्सा आ ही जाता है। इतनी बड़ी हो गई तू। इस उम्र में मैं मां बन चुकी थी। पर आजकल...हे भगवान, दुश्मन को भी ये दिन न दिखाना...आदमी तो अब दिखाई नहीं देते। नीयत बिगड़ गई। पैसे को रोते हैं। नीयत नहीं तो पैसा कहां रहेगा ! पहले एक कमाता था, बीस खाते थे ; आज बीस कमाते हैं, पेट एक का भी नहीं भरता।”

और मां का दिल क्रोध से उफन आया। वह वेबस का क्रोध था। आंसू बनकर रह गया। मां रो रही थी, मालती रो रही थी, ललिता भी रो रही थी। कई क्षण सब मौन रहे, पर मौन तो शेषनाग की सहस्र

जिह्वाओं से बोलता है। उस अन्तर्नाद को मां सह न सकी। एकाएक बोली, “चल, जल्दी से नहा ले ! बहुत काम पड़ा है...और तू क्यों रोती है ! रोने को हम हैं। देख, अब इधर-उधर आंसू बहाये तो मुझ-सा बुरा कोई न होगा ! भगवान सबको देखते हैं। हमने किसीका बुरा नहीं चेता ; हमारा भी बुरा नहीं होगा। देर-सबेर लगी ही रहती है।”

सारे समय मालती कुछ नहीं बोली। उसके मन की बात कोई नहीं समझता। केवल एक बार अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से मां को देखा, फिर दूर आसमान में उड़नेवाले पक्षियों को। फिर मां के पीछे-पीछे नीचे उतरने लगी। ललिता तबतक उन छोटे बच्चों में जा रमी थी, जो बड़ों की गैरहाजिरी में घर का शासन करना सीखते हैं। मां ने उससे कहा, “तू इनसे क्यों उलझ रही है ? जा, पहले अपनी जीजी को गुसलखाने में कपड़े दे आ। फिर मेजपोश बदल दे। तख्त की चादर भी तो बदलनी है।”

फिर अन्दर जाकर मालती के लिए कपड़े निकाले। बेटी के शरीर पर कौन-सा कपड़ा फबता है, यह वह जानती है। उन्हींको लेकर स्वयं गुसलखाने पहुंची। बोली, “बेटी, नहा-धोकर कुसुम और सुबोध के कपड़े बदल दीजो। मरे भूत-बने फिर हैं।”

वहां से लौटी तो पाया कि पति आ गए हैं। मुस्करा रहे हैं। पास जाकर धीरे-से पूछा, “आ गया ?”

“हां, आ गया। लेकिन शाम को ही लौट जायगा।”

“कैसा है ?”

“अच्छा है।”

“कुछ कहा, क्या चाहता है ?”

दीर्घ निःश्वास खींचकर लाला रामनाथ बोले, “आजकल के लड़के कौन नहीं जानता कि क्या चाहते हैं ! उल्टा पल्ला पसन्द करते हैं। गहने ज्यादा न हों। कानों में नये डिजाइन के कर्णफूल, गले में मणिमाला और अंगुलियों में नये कट की अंगूठी। और भई तुम जानो, मुंह चढ़ाकर न आये।”

मां ने कहा, “आज तो वह रोये जा रही है।”

“क्यों ?”

“क्यों क्या ! बेवकूफ नहीं है । सब-कुछ समझती है ।”

दोनों मौन हो गए । दोनों एक-दूसरे को देखते रहे, अनुभव करते रहे कि यह शादी होनी ही चाहिए । इस दायित्व से मुक्ति मिलनी ही चाहिए ।

सहसा लालाजी बोले, “शायद वह मान जाय । सोच-समझकर बात करना । मैं नहीं आऊंगा ।”

मां को मानो मुक्ति मिली । एकाएक कहा, “ना-ना, तुम मत आना । अपनी लाज अपने हाथ ।”

“हां, बड़े शहरों में लाज-शरम का इतना ख्याल नहीं, जितना कस्बों में । छींकते नाक कटती है ।”

और वह चले गए । आले में तुलसी का एक बिरवा मालती की मां ने बड़े आदर से लाकर रखा था । उसीके सामने जाकर खड़ी हो गई और नयन मूंद लिये, उसकी महक मानो तन-मन में रच गई हो । न जाने कबतक खड़ी रही । तभी ध्यान भग्न हुआ जब किसीने दरवाजे पर आहट की । एक बार सुनकर भी अनसुना कर दिया । आहट फिर हुई तो गम्भीर स्वर में पुकारा, “ललिता, देख तो बेटी, कोई आया है ।”

ललिता किवाड़ खोल चुकी थी । देखती है, सामने दो युवक हैं । एक को वह पहचानती है । रिश्ते में भाई लगता है । पर दूसरे युवक को देखकर वह ठिठकने का अभिनय करती है । फिर एकाएक हाथ जोड़कर नमस्ते करती है और तुरन्त मां के पास लौट आती है, “बसन्त भैया आये हैं, मां !”

अवाक-अनजान मां बोली, “बसन्त आया है ! कहां है ?”

दोनों ललिता के पीछे ही तो थे । बसन्त ने कहा, “नमस्ते, चाची !”

दूसरा युवक भी धीरे-से मुस्कराया । बोला, “नमस्ते !”

“जीते रहो ! बड़ी उमर हो । आओ-आओ । अरे ललिता, ओ ललिता, कहां चली गई ! अभी तो यहां थी । पंखियां तो उठा ला, बेटी । क्या बताऊं बेटा, कस्बे में बिजली आ तो गई है, पर हमने अभी ली नहीं । क्यों रे बसन्त, बहुत दिन में आया । शहर में ऐसा जी लग गया ।”

मां बोलती जाती थी और उसके मित्र को परखती जाती थी । गेहुआ

रंग, लम्बा कद, पतला मुख, छरहरा बदन, भोली मुस्कान...

बसन्त ने उत्तर दिया, “चाची, जी का क्या है ! लगाने से कहीं भी लग जाता है। फिर शहर में तो बहुत-से लालच हैं।”

“तभी तो बेटा, सारी दुनिया शहरों में खिंची जा है।”

और फिर दूसरे युवक की ओर देखकर बोली, “तेरे दोस्त हैं न ?”

“लो, परिचय कराना ही भूल गया। बड़े प्यारे दोस्त हैं। नाम है प्रभात। शहर से निकलने को जी नहीं करता। बड़ी मुश्किल से एक दिन के लिए आये हैं।”

“आजकल छुट्टी कहां मिलती है !”

फिर दृष्टि घुमाकर प्रभात से पूछा, “कहां के हो जी ?”

इस प्रश्न का जो उत्तर प्रभात ने दिया, उसका छोर पकड़कर मां उनके बहुत पास आ गई, जैसे एक गहरी आत्मीयता ने दोनों को जकड़ लिया, “तुम्हारा भाई तो अभी पढ़ रहा है न ?”

“जी, बी० ए० में आ गया है।”

“और बहन ?”

“वह दसवीं में है।”

“अच्छा, शादी कब करोगे ?”

“पिताजी इन जाड़ों में करना चाहते हैं ?”

बसन्त बोला, “चाची, पहले इसकी शादी होगी। इन्हीं जाड़ों में।”

मां हँस आई, “इनकी शादी की क्या बात है ! हजार लड़कियां हैं।”

जैसे एकाएक कुछ याद आ गया। पुकार उठी, “अरे ललिता, ओ ललि ! कभी तो भूले-विसरे बसन्त ने चाची की सुधि ली और तुम लोग जा टंगीं तिमंजिले पर। अरे, बदला ही लेना है तो फिर कभी लेना। इसे कुछ खिला-पिला तो ! देख, आज तेरे लालाजी आम लाये थे।”

पूरी बात कह भी न पाई थी कि ललिता दोनों हाथों में दो बड़ी तश्तरियां लिये वहां उपस्थित हो गई। एक में फल थे, दूसरी में मिष्ठान्न। मां ने फिर अभिनय किया—“अरे, क्या लिये बैठी थी ! भई, बहन को भाई का बड़ा खयाल रहता है।”

बसन्त हँस आया—“बहन जितना स्नेह भाई से करती है उतना कौन

किससे करेगा चाची ?”

प्रभात बोले, “आपने बड़ा तकल्लुफ़ किया ।”

मां ने अचरज से कहा, “तकल्लुफ़ ! तकल्लुफ़ तुमने देखा नहीं है, तभी कहते हो । महंगाई का जमाना है । हर चीज में आग लगी है । भर क्या करें, बच्चों का घर । तुम जानो, मुंह चलाने को कुछ चाहिए ही । ललिता के बाबा कहा करते थे—भैंस, औरत और बच्चों का मुंह चलता अच्छा ।”

सुनकर सहसा सबको हँसी आ गई । पर इससे खाने-पीने में रत्ती-भर व्यवधान नहीं पड़ा । बातें भी चलती रहीं, केवल बीच-बीच में दृष्टि चुराकर ललिता उस युवक को देख लेती । फिर मुस्करा आती । उसे उस क्षण सबकुछ अच्छा-ही-अच्छा लगता । वह जानती है, यह सब स्वाभाविक है, फिर भी वातावरण में एक नाटकीयता है । सोचती है, इस अभिनय से मुक्ति पाकर वह इस युवक से साफ-साफ बात क्यों न कर ले, कि सहसा बसन्त ने पूछा, “चाची, मालती कहाँ है ?”

मां गम्भीर हो आई । बोली—यहीं है, काम में लगी होगी । लली, जरा कहियो तो कि भैया बुला रहे हैं । और हां, पान लेती आयगी । जरा-सी देर में कुछ नहीं बिगड़ता । प्रभात भी अपने ही हैं ।”

मां की अभिनय-कुशलता पर मुग्ध ललिता की हँसी फूट आने को हुई । किसी तरह मुंह में धोती ठूसकर वह वहां से भाग गई । कुछ क्षण बाद एक हाथ में पानों की तश्तरी लिये, मानो नव-वधू की लज्जा में सिमटी हो, ऐसी गम्भीर गति से मालती ने वहां प्रवेश किया । बसन्त की ओर देखकर बोली, “नमस्कार भैया ! कैसे हो ?”

बसन्त मुस्कराकर बोला, “पहले उनसे पूछो, अतिथि हैं ।”

दृष्टि जैसे धरती में गड़ गई हो । तश्तरी उस ओर बढ़ा दी । पान लेकर प्रभात ने अनायास ही मालती को ऊपर से नीचे तक देख लिया । इस प्रयत्न में सहसा दृष्टि मिल गई । कम्पन के आवेग ने दोनों को आलोड़ित कर दिया । क्षण-भर के लिए दोनों माधुर्य-सागर में डूब गए । एकाएक बसन्त बोला, “सुना है, तू बहुत काम करती है ?”

मालती ने सहज होने का प्रयत्न करते हुए उत्तर दिया, “नहीं तो

भैया । बस, ज़रा साड़ी पर बूटे काढ़ रही थी ।”

“देखें ज़रा ।”

“अभी नहीं, अघूरी है ।”

“तो क्या हुआ ? तेरी कुशलता देखनी है, धोती नहीं पहननी ।”

सब हँस पड़े । मालती लज़ाकर भाग गई ।

दो

मालती उस रात सो न सकी ।

वह कुछ खोई-खोई सी रहती है । कुछ डूढ़ना चाहती है और जो कुछ डूढ़ पाती है उसे किसीके साथ भोगना चाहती है । यह ‘किसी’ कौन है ? वह उसे इतनी पीड़ा क्यों देता है ? क्यों चाहती है कि वह ‘किसी’ पीछे से आकर उसके नेत्र मूंद ले और वह अपना सब ज्ञान, अपनी सब खोज, अपना अस्तित्व उसे समर्पित कर मुक्त हो जाय ! क्यों ! आखिर... क्यों ऐसा हो !...

इस प्रश्न का उत्तर उसे नहीं मिलता । अपने उस काल्पनिक मीत का चेहरा भी वह नहीं देख पाती । उसका स्पर्श भी अनुभव नहीं कर सकती । पास आ-आकर वह दूर हो जाता है । उसको अन्तर में देखती है, हृदय में उसका स्पन्दन सुनती है, नेत्रों में उसका चित्र उतारती है, रोम-रोम में उसका अस्तित्व अनुभव करती है, पर पार्थिव जगत् में वह कहीं भी तो नहीं है ।

उपचेतन मन उससे पूछता है, ‘वह पास क्यों नहीं आता !’ वह कुछ उत्तर नहीं दे पाती । अपने में ही खो जाती है । एक मादक अलस भाव उसे जकड़ लेता है । वही अलस-मादकता उसकी कान्ति बनकर उसे सौन्दर्य की प्रतिमा बना देती है; लेकिन जैसे-जैसे वह मीत दूर, और दूर, होता जाता है वैसे-वैसे वह मादक अलसता वेदना का रूप लेती जाती है । वह उद्विग्न हो उठती है । सारे वातावरण में चिड़चिड़ाहट भी आती है । सभीके मन जैसे भुंभुलाहट से मुखर हो उठते हैं...

वह चौदह की भी न हो पाई थी कि उसके लिए वर की खोज आरम्भ हो गई थी। अब वह अठारहवें में है, लेकिन खोज का अन्त ही नहीं आ रहा। लक्ष्य दृष्टि में आकर भी लोप हो जाता है। एक से एक कुरूप लड़कियों की शादियां होती हैं, लेकिन वह अविवाहित ही है। वह कुरूप नहीं है। श्यामल वर्ण, पतला-लम्बा मुख, सुघड़ नासिका, मृग-शावक जैसे कृष्ण नयन, काले-लम्बे-घने केश और छरहरा शरीर, उस पर अठारह वर्ष की आयु। एक दिन मां ने पड़ोसिन से कहा—“मेरी मालती ऐसी बदसूरत तो नहीं है कि उसे वर न मिले।”

पड़ोसिन ने जवाब दिया—“नहीं क्यों मिलेगा? पर वह बात है कि आजकल कोई रूप को नहीं देखता, रूपा को देखते हैं। हमारे वक्तों में नाई-ब्राह्मण सब काम करते थे। तब न कोई रूप देखता था, न रूपा। बस, खानदान देखते थे।”

“हां जीजी, तब खानदान सब-कुछ था। अब रूपा सब-कुछ है। रुपया दो तो काली-कलूटी भी परी बन जाती है।”

“अरे बहू, तुझे मालूम नहीं कि पण्डित रामकिशोर के बेटे ने, अरे वही जो इंजीनियर है, दीनानाथ वकील की बेटी से शादी की है। न रूप, न रूप का धोवन। बस, कालेज में एक साथ पढ़ते थे; बात हो गई और मां-बाप को शादी करनी पड़ी।”

“आजकल जो न हो सो थोड़ा है। उन्ती पढ़ाई यही खुदाने खुद-वायगी। ना जीजी, मालती ऐसी नहीं है।”

“ऐसी क्यों होगी? तुम्हारी बेटी है। देखती हूं, तो जी भर आता है। ऐसी लक्ष्मी, अबतक वर नहीं मिला। पर मिलेगा, जरूर मिलेगा, ऐसा मिलेगा कि राज करेगी।”

मालती ने ये सब बातें सुन ली थीं। मुस्कराई थी। नयन मूंदकर—उपचेतन मन से जैसे कहा था—“क्या ही अच्छा होता कि मैं कालेज में पढ़ने जाती और...”

और...

सहसा वह कांप-कांप आती। नयनों के आगे धुंए के बादल उठकर दृष्टि को धुंधला कर देते। वह अपने वर का मुख न देख पाती।

अवसन्न हो रहती। मां-बाप ने उसके लिए कितने वर दूँढ़े, उस सबकी उसे याद है। क्लर्क, विद्यार्थी, व्यापारी, वकील, सम्पन्न ज़मींदार, युवक, प्रौढ़, सभी तो थे। हर बार वह अपने जीवन का स्वप्निल महल उठाता शुरू कर देती। कभी वह महल मादक रंगीनियों में खो जाता, कभी वह मां-ऐसी बन जाती, कभी जननेत्री, कभी वैभव-विलास में आकण्ठ निमग्न राजरानी...लेकिन इन सारी विभिन्नताओं के बीच एक समानता थी कि वह महल हर बार ढह जाता था। तब उसे अपना जीना अपराध लगने लगता और कई-कई दिन तक वह झुंझलाती रहती।

एक समय वर पक्ष के लोग चुपचाप आये और तुरन्त 'अस्वीकृत है' ऐसा कह कर चले गए। कई दिन बाद यह बात उसने पड़ोस में सुनी और उस दिन वह बहुत रोई। क्यों रोई, वह नहीं जानती। इतना ही जानती है कि वह स्थित-प्रज्ञ नहीं है।...

एक और बार की बात उसे खूब याद है। स्वयं वर महोदय इंटरव्यू करने आये थे। ठाठ से उनका स्वागत हुआ। उस दिन मालती को सजाने में मां ने भी अपनी सारी कला खर्च कर दी। वर भी तो सचमुच सुन्दर था। बड़ी-बड़ी विश्वस्त आखें, उन्नत ललाट, भरा हुआ किंचित् कठोर मुख, जिसे नेत्रों के भीतर से भाँकती रहस्यमयी मुस्कान एक माधुर्य से दीप्त कर रही थी। मालती के वक्ष में एक साथ अनन्त मादक लहरें तरंगित हो आईं। कई दिन तक सारो विश्व माधुर्य से भरा-भरा लगता रहा। सबकुछ मधुर-मादक, सबकुछ अद्भुत, अनिर्वचनीय।

मालती इस समय भी जैसे कांप आई हो। दृष्टि उठाकर देखा, पाया कि नौवीं का चन्द्र एक श्यामल मेघशावक के पीछे चला गया है और धरती धुंधला आई है। मालती ने सोचा, क्या मेरे भाग्य पर भी इसी तरह श्याम मेघ नहीं छा गया है! क्या वह किसी भी क्षण दूर नहीं होगा! क्या भाविष्य का वह मादक स्वप्न मात्र अतीत की स्मृति बनकर ही रह जायगा...

और सचमुच वह स्मृति बनकर ही रह गया। एक दिन पिताजी लौटे तो उनके मुख पर चिन्ता व्याप्त थी। मां से उन्होंने कहा—“वे पांच हजार रुपये नकद मांगते हैं।”

मां को विश्वास नहीं आया, “पांच हजार !”

“और मोटर-साइकिल !”

“... ..”

“और रेडियो, कैमरा, घड़ी, अंगूठी, चांदी के बर्तन, मशीन, सोफा-सैट, ड्रैसिंग टेबल, कालीन...”

वह इतनी तेजी से बोलते चले गए कि किसी अज्ञात भय से मां आपाद-मस्तक सिहर उठी और लालाजी ने सामने पड़े हुए गिलास को जोर से ठोकर मारते हुए अट्टहास किया। मां ने घबराकर उनका हाथ पकड़ लिया। फिर कई क्षण दोनों अपनी ही आकृतियों से डरते रहे। कांपते रहे, जैसे उस क्षण वे ही दो थे, केवल वे ही दो, लेकिन एक तीसरा व्यक्ति भी उन्हें देख रहा था, यह वह नहीं जानते थे। वह थी मालती। पर वह थी भी और नहीं भी थी। किसी अज्ञात, सुदूर क्षितिज पर एक दृश्य उभर रहा था, कितना सुदर्शन, कितना प्रिय था वह ! मृदु-मन्द स्वर में परीक्षा के अन्त में उसने पूछा था—“मेरे बारे में भी कुछ जानना चाहती हो ?”

लाज के मारे वह बोल न सकी थी। बार-बार आग्रह करने पर किसी तरह उसने कहा था, “नहीं।”

“आगे पढ़ना पसन्द करोगी ?”

“जी...जी हां।”

“अंग्रेजी पढ़ोगी ?”

“जी...जी हां।”

“खाने-पीने का परहेज करती हो ?”

एकाएक अपने को चकित करती हुई वह हड़ स्वर में बोल उठी थी, “जी नहीं।”

उस समय मालती जिस गौरव का अनुभव कर रही थी, उसके विरोध में खड़े रहने की शक्ति किसी भी संस्कार में नहीं थी। लेकिन संस्कार से भी प्रबल हैं रीति-रिवाज। वह उन्हें न पा सकी। रोई भी नहीं। बस, स्तब्ध हो रही, जैसे किसी ने छाती के भीतर कचोट लिया हो।

आज भी जैसे उस कचोट की पीड़ा को अनुभव करती, हुई वह

अनमनी-अनमनी हो रही है। उसका मन रह-रहकर पूछता है—“क्यों जी, प्रभात कैसा लगता है?”

उपचेतन मन उत्तर देता है—“बुरा तो नहीं है।”

“विवाह कर लोगी?”

“मना नहीं करूंगी।”

“तुम कुछ प्रसन्न नहीं जान पड़तीं?”

मालती सहसा कांपी, गर्दन को एकाएक झटका दिया और उठ बैठी। आहट पाकर ललिता जाग आई। बोली—“क्या है, जीजी?”

“कुछ नहीं। प्यास लगी है।”

पानी पी चुकी तो मां ने चौंकने का अभिनय किया। निंदासी-सी बोली—“कौन है?”

मालती ने जवाब दिया—“मैं हूँ।”

फिर सबकुछ स्तब्ध हो गया। मेघशावक न जाने कहाँ जाकर विलीन हो गए और चन्द्रदेव मुक्त-मन धरती के वक्ष पर अपनी ज्योत्स्ना बिखेरने लगे। मालती ने उन्हें देखा। फुसफुसा उठी—“मैं सचमुच तैयार हूँ।”

मानो उसे भय था कि कहीं प्रभात भी मना न कर दे। इसलिए वह चन्द्र को साक्षी बनाना चाहती है। कहकर आंखें मींच लेती है। भयातुर कबूतर भी आंखें मींच लेता है। सुना है, शूतुरमुर्ग भी रेत में मुंह गड़ा देता है। पर मनुष्य क्या पशु है! भय उसे त्रस्त क्यों करता है! क्यों...

पर ठीक इसी क्षण मां के मन में भी यही भय कुंडली मारे बैठा था। प्रभात ने भी मना कर दिया तो...

मां ने तेजी से करवट बदली। वह इस प्रश्न से बचना चाहती है। पर प्रश्न है कि प्रति-क्षण दुगुने वेग से प्रतिध्वनित हो उठता है—हां, प्रभात ने भी मना कर दिया तो...

“तो जो कुछ होगा हो जायगा। मैं क्या करूं! मैं क्या कर सकती हूं! मैं मर नहीं सकती। मेरी तरफ से कुछ भी हो।”

“तुम्हारी तरफ से कुछ भी हो!”

“हां-हां। कह तो दिया, कुछ भी हो। आखिर कुछ तो होना ही है।”

कहने को तो उसने कह दिया, पर दूसरे ही क्षण उसे एक धक्का

लगा। वह हाँफने लगी। उसने घबरा कर आँखें खोल दीं। चन्द्रमा उसी तरह चमक रहा था। तारे उसी तरह जगमगा रहे थे, पर उसे लगा कि वे सभी अट्टहास कर रहे हों। उसने पैर सिकोड़ कर फिर आँखें मींच लीं। चादर ऊपर ले ली। पर अट्टहास तो और भी तीव्र होकर उसकी छाती को कंपाने लगा। वह इस आघात को न सह सकी। उसका दम घुटने लगा। आखिर कातर होकर उसने अपने प्रभु को पुकारा—हे ईश्वर, मेरी लाज तुम्हारे हाथ है। हे दीनानाथ, किसी तरह यह लड़का इन्कार न करे। किसी तरह मालती के हाथ पीले हो जायें। मेरी बेटो को यह वर मिल जाय !

और वह रो पड़ी। अपनी असमर्थता का यह बोध उससे सहा नहीं गया। इसलिए स्वर सहसा तीव्र हो उठा। उसी स्वर को मालती ने सुना। ललिता ने सुना। मालती तब एक मादक स्वप्न देख रही थी। हवाई जहाज में बैठी वह कहीं दूर, बहुत दूर, जा रही है। उसके साथ एक युवक है। वह उन्हींमें से एक है जो एक-न-एक दिन उसके सम्भावित स्वामियों की सूची में रहा है। वह नीचे की भागती हुई धुधली दुनिया को देखती है। युवक कहता है—“जीवन इसी का प्रतिरूप है।”

वह उत्तर देती है—“इसीलिए वह प्रिय है।”

युवक मुस्कराता है, पर दूसरे ही क्षण उसके मुख पर चिन्ता के भाव उभर आते हैं। घबरा कर कहता है, “मालती, इंजन में खराबी हो गई है। शायद...”

वाक्य पूरा भी नहीं हो पाता कि मालती को लगता है जैसे वह तीव्र वेग से नीचे गिर रही है। जैसे कोई रो रहा है। तभी उसकी आँख खुल जाती है। और माँ की सुबकियाँ भी तीव्र हो उठती हैं। कई क्षण वह स्वप्न के भय से अस्त रहती है, पर जब संज्ञा लौटती है तब भी जुंबिश नहीं करती। केवल ललिता एक बार गर्दन उठा कर माँ को देखती है। उसे जीजी पर क्रोध आ रहा है, यह जीजी सदा अनमनी उदास क्यों रहती है ! रोती क्यों है ! ऐसा कुछ क्यों नहीं करती, जिससे माँ का दुःख कम हो !

एक बार उसने सोचा था, यदि जीजी का विवाह नहीं होता तो क्या

हो जायगा ! यदि किसी का विवाह न हो तो क्या हो ! उसका विवाह न हो तो...

अगले वर्ष वह स्वयं षोडशी होने जा रही है। उसका नाम अभी से मालती के साथ लिया जाने लगा है। वह मालती से अधिक सुन्दर है। पढ़ी-लिखी भी अधिक है। विवाह की बात से उसे सुख मिलता है। यद्यपि वह उस सुख के स्वरूप को नहीं जानती, तथापि बचपन से विवाह की बात सुनते-सुनते उसे उस शब्द के प्रति एक आकर्षण पैदा हो गया है। लेकिन मालती को लेकर जो दुःखान्त नाटक उसके परिवार में खेला जा रहा है, उससे उसे ग्लानि भी कम नहीं। क्या ही अच्छा होता, यदि वह ग्लानि हृदय की धडकन को शान्त कर पाती। नहीं कर पाती, इसी-लिए वह सोच लेती है कि यह विवाह तो आवश्यक है। पर क्या उसका कोई दूसरा रास्ता नहीं है ! उन दूसरे रास्तों की बात उसने पुस्तकों में पढ़ी है और सोचा है कि वह और उसकी जीजी उन रास्तों को क्यों नहीं स्वीकार कर सकते। क्यों ?...

एक दिन उसने जीजी से कहा, “जीजी, तुम आगे क्यों नहीं पढ़तीं।”

जीजी मुस्कराई, “क्यों ?”

“ऐसे ही पूछती हूँ।”

मालती ने गम्भीर होकर कहा, “मां मुझे स्कूल नहीं भेजेंगी।”

“तो घर पर पढ़ सकती हो। शशि को देखो, वह कभी स्कूल नहीं गई, फिर भी साहित्यरत्न की परीक्षा पास कर ली है। बंगला भी जानती है।”

मालती ने कहा, “उसका क्या, उसे कोई पढ़ा सकता तो प्रोफेसर बनती।”

“हां जीजी, वह बहुत होशियार है। कलकत्ते के एक अखबार में मैंने उसकी कहानी देखी है।”

“सच !”

“हां जीजी। तुम भी पढ़ लो। तुम भी कहानियां लिखा करना।”

मालती का मन गुदगुदा आया। उसी सन्ध्या को बहुत डरते-डरते उसने मां से कहा। सुनकर वह एकदम उफन उठी, पर भाग्य से पिता उस

समय वहीं थे। उन्होंने उसकी रक्षा की। कहा, “बेटी, दे सको तो प्रभाकर की परीक्षा दे दो !”

और फिर एकान्त होने पर पत्नी से बोले, “परीक्षा पास कर लेने पर अच्छा वर मिलने की सम्भावना है।”

मां के लिए इतना काफी था। उसने मालती को घर के सब कामों से मानो छुट्टी दे दी। जब-तब ललिता से कह उठती, “देख, जीजी को अधिक तंग न करना, उसे इस्तहान देना है !”

लेकिन भाग्य की विडम्बना, प्रभाकर की सनद भी मालती की मदद न कर सकी। उसे वर नहीं मिला।

तीन

उस दिन वह कमरे में बैठी कपड़े सी रही थी। बीच-बीच में सिनेमा के किसी गीत की कड़ी भी गुनगुना उठती थी। उस गीत का संबंध उसके दिल की व्यथा से था, इसीलिए कुछ क्षण में ही वह इतनी आत्मविभोर हो उठी कि उसका एक हाथ पहिए पर और दूसरा कपड़े को सन्हाले ही रह गया। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में जल उमड़ आया। मुख पर करुण स्निग्धता छा गई, जैसे शून्य में खो गई। तभी एकाएक उसने सुना, दूर, बहुत दूर, कोई उसे पुकार रहा है...

एकबारगी तीव्र वेग से कांपते हुए उसने गरदन घुमाकर देखा—शशि है। तब उठने के प्रयत्न में मशीन से टकराकर वह गिरते-गिरते बची। ललककर शशि का हाथ थाम लिया और स्नेह-सिक्त स्वर में बोली, “कब आई, शशि ?”

शशि ने मुस्करा कर कहा, “जब तुमने देखा।”

“मैंने तो अभी देखा है। क्या कुछ देर से खड़ी थी ?”

“जी नहीं, खड़ी नहीं थी। आपका संगीत सुन रही थी।”

“ओहो ! अच्छा, बता तो, कब आई थी ?”

शशि अबतक बैठ चुकी थी, बोली, “आज ही।”

“कुछ दिन रहोगी ?”

“छोटे भइया बदल कर यहीं आ गए हैं ।”

“सच ?”

“हां !”

“तब तो बहुत अच्छा हुआ । तुम्हारी बहुत याद आती थी ।”

“सच ?”

“नहीं विश्वास आता तो जाने दे ।”

इस तरह शीघ्र ही वे दोनों सखियां अपनी सीमित दुनिया के सुख-दुःख की बातों में डूब गईं । कुछ देर बाद सहसा मालती ने पूछा, “क्यों शशि, सुना है, तू अखबारों में लिखने लगी है ?”

“हां, कुछ लिख लेती हूं ।”

“ललिता ने मुझे एक कहानी दी थी ।”

“कौन-सी ?”

“‘विमला,’ उसमें तुमने अपनी ही कथा तो लिखी है !”

“कैसी लगी ?”

“बहुत अच्छी; पर यह तो बता, क्या तूने सचमुच ही वर ढूंढ़ लिया है ?”

“ढूंढ़ रही हूं ।”

“अपने-आप ?”

“क्यों ? क्या कोई पाप है ?”

मालती एकाएक उत्तर न दे सकी । कहना चाहती है—“पाप तो है ही”, पर कह न सकी । शशि ने फिर पूछा, “बता, क्या पाप है ?”

“पता नहीं, पर क्या लड़कियां ऐसा करती हैं ?”

“करती थीं, करती हैं और कर सकती हैं ।”

स्तब्ध-हतप्रभ मालती मौन हो गई । कई क्षण बाद बोल सकी । पूछा, “अच्छा, यह बता, कुछ और कहानियां लिखी हैं ?”

“हां, कलकत्ते के ‘संदीप’ में छपी हैं ।”

“छपवाने का कुछ देना पड़ता है ?”

शशि हठात् जोर से हँस पड़ी । बोली, “पैसा मुझे मिलता है ।”

मालती को विश्वास नहीं आया । बोली, “पत्र में क्या तुम्हारा कोई

परिचित है ?”

“था तो नहीं, पर अब हो गया है ।”

“कौन ?”

“एक उप-संपादक है ।”

“उससे मिली हो ?”

“नहीं ।”

“तुम्हारे भाई का परिचित है ?”

“नहीं ।”

“हाय राम, तो तुम कैसे जान गई ?”

“कहानी के द्वारा । उन्हें मेरी कहानी पसन्द आई और उन्होंने मुझे प्रशंसा का पत्र लिखा ।”

“हां !”

“हां, सच । पहले तो मुझे विश्वास नहीं आया, कुछ बुरा भी लगा; पर फिर जब उन्होंने कई बार लिखा तो...”

“कई बार लिखा ?”

“हां, हर अंक के लिए कहानी चाहते हैं । कभी न भेजूं तो पत्र-पर-पत्र भेजते हैं । एक बार तो तार भेजा ।”

“तार !”

“हां, मालती ! वह तार देखकर घर में कोहराम मच गया । खोलने पर पता लगा कि ‘संदीप’ के संपादक ने कहानी मांगी है ।”

“तार से कहानी मांगी । हाय राम, तू इतनी बड़ी लेखिका बन गई !” फिर उसकी आंखों में आंखें डालकर बोली, “सच कहना, वह सम्पादक तुम्हारी कहानियों की प्रशंसा करता है, या तुम्हारी ?”

शशि शरारत से हँस पड़ी, बोली नहीं । मालती ने ही कहा, “अच्छा, कोई पत्र हो तो दिखाओ ।”

“तुम्हें दिखाऊं ?”

“किसी को कानों-कान खबर न होगी ।”

“अरे, खबर हो भी तो क्या मैं डरती हूँ ! पत्र सपने में थोड़े ही आते हैं ! घर में सब जानते हैं ।” शशि ने गर्व से कहा ।

और उसने एक लिफाफा निकाला, उसमें कई पत्र थे । वह एक पत्र निकाल कर देना चाहती थी कि मालती ने झपटकर लिफाफा छीन लिया । बोली, “साथ में पत्र लिये फिरती है और बातें बनाती है ! वाह, मेरी रानी ! दिखाने को तो लाई ही थीं ।”

शशि ने विद्रूप से कहा “बड़ी दुष्ट है ! अपना मन करता होगा । मैं जानती हूँ ।”

पत्र पढ़ते-पढ़ते मालती बोली, “जानेगी क्यों नहीं ! भुगत रही है न !”

मालती जल्दी-जल्दी एक पत्र पढ़ने लगी :

“प्रिय कुमारी शशिकांता,

कहानी मिली । तुरन्त पढ़ गया । मन को बहुत अच्छा लगा । तुम्हारी कला में जो अनुभूति है, तुम्हारी शैली में जो आत्म-विश्वास है, वह बहुत कम लेखकों में पाया जाता है । अगर इसी प्रकार तुम्हारी कला निखरती रही—और जैसा कि मेरा विश्वास है, वह निखरेगी—तो निस्सन्देह एक दिन तुम हिन्दी-साहित्य और भारत की एक श्रेष्ठ लेखिका के रूप में प्रख्यात होगी ।

तुम्हारी पिछली कहानी ‘आकाश-गंगा’ चित्रण की दृष्टि से लाजवाब थी । तुमने नीमो के चरित्र को ढालने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया । वह तो जैसे तुम्हारी कलम की नोक पर से बहता चला गया है । बेचारी शृंखलाओं में बंधी मध्यवर्ग की बालिका ! उसके सारे सपने असमर्थता की वेदी पर खंड-खंड होकर बिखर जाते हैं ! बिखर जाते हैं तब वह जागती है । समाज को चुनौती देती है और अन्त में सफल होती है । जिस समाज ने एक दिन उसकी खिल्ली उड़ाई थी, वही उसकी प्रशंसा करता है ।

कहानी को बार-बार पढ़ने को जी करता है और जी करता है कि तुम्हारी लेखनी को चूम लूं.. ”

मालती सहसा सिहर उठी । दृष्टि उठाकर उसने शशि को देखा । वह तन्मय, आत्मविभोर मालती को देख रही थी । मालती बोली, “ऐसे पत्र आते हैं ?”

“बुरे हैं ?”

“कोई पढ़ ले तो ?”

“तो क्या हो जायगा और बिना पत्रों के क्या कुछ कम होता है ? मां-बाप तो मेरे हैं नहीं, जिनकी नाक कटे । भाई-भाभी का क्या है, जितनी जल्दी उनके घर से निकलूं, उतना ही अच्छा है ।”

एक सांस में शशि यह सब कह गई, लेकिन मालती सहसा ~~उठ~~ जवाब नहीं दे सकी । शशि फिर बोली, “पर अभी किसीसे कहना मत ! अच्छा !”

मालती अब भी खामोश रही, पर उसकी दृष्टि कह रही थी कि उसपर विश्वास किया जा सकता है । तभी ललिता वहां आ गई । कहा, “जीजी, बैरिस्टर साहब के घर से बुलावा आया है । नरेशकुमार की सगाई है ।”

शशि ने पूछा, “नरेशकुमार कौन ?”

“अरे जीजी, वही बैरिस्टर बुधवार का लड़का । रुड़की पढ़ता है ।”

“ओ हो, श्रीमान लतखोरीलालजी !”

ललिता हँस पड़ी, “अरे रे जीजी, क्या कहती हो ! ज़रा लंबा है, पर तुमसे अच्छा है ।”

शशि ने उम्मी मुक्त हास्य से कहा, “अरे, मुझसे तो सभी अच्छे हैं, पर उससे क्या कोई सुंदर हो जाता है ?”

मालती ने सहसा पूछा, “लेकिन शशि, सुंदर होना क्या आवश्यक है ?”

“पता नहीं,” शशि ने जवाब दिया, “सुंदरता आंखों को अच्छी लगती है । स्वयं कोई कितना ही कुरूप हो, पर अपने साथी को वह परम सुंदर देखना चाहता है ।”

मालती बोली, “फिर जो असुंदर हैं, वे क्या करें ?”

“वे से तुम्हारा मतलब नारी से है न, क्योंकि पुरुष पर तो ऐसा कोई बंधन है नहीं ?”

“नारी के सामने दो रास्ते हैं । एक यही समझ लो कि वह साहसी बनकर अपना मार्ग खोजे । दूसरा, आत्महत्या कर ले ।”

मालती एकटक उसे देखती रह गई, बोली नहीं । शशि ने ही कहा, “एक और रास्ता है ।”

“कौन-सा ?”

“राज्य की ओर से यह कानून बन जाना चाहिए कि कुरूप पुरुष कुरूप स्त्रियों से ही विवाह कर सकते हैं।”

दोनों बहनें स्तब्ध हो उसका मुंह देखने लगीं। दो क्षण बाद मालती जसकी, “क्या कहती हो?”

“ठीक तो कहती हूं,” शशि ने कहा, “पर राज्य को एक और काम करना चाहिए। उन्हे ऐसा बना देना चाहिए कि वे संतान उत्पन्न न कर सकें।”

अब मालती एकाएक जोर से हँस पड़ी।

शशि ने उसी तरह गंभीर बने रहते हुए कहा, “तुम हँसती हो, पर मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि ऐसा किया गया तो एक दिन संसार से कुरूपता मिट जायगी और भगवान की इस सुंदर सृष्टि में एक-से-एक बढ़कर सुंदर नर-नारी दिखाई देंगे।”

भगवान का नाम सुनते ही ललिता को सहसा एक बात याद आ गई। बोल उठी, “जीजी, कहते हैं कि भगवान पापों का दंड देते हैं। अगर उन सुंदर स्त्री-पुरुषों ने बुरे काम किये और भगवान ने उन्हें कुरूप होने का दंड दिया तो क्या होगा?”

शशि ने बरबस कुछ सोचने का नाट्य करते हुए कहा, “अरे हां, यह तो मैं भूल ही गई थी। तब तो कोई मार्ग नहीं। भगवान से कौन पार पा सकेगा, और वही क्यों? इस प्रकृति से कौन लोहा लेगा? यह किसीको काला, किसीको पीला, किसीको श्वेत, किसीको लंबा-तगड़ा, किसीको सींक-सलाई, किसीको ठिगना-नाटा बनायगी तो कैसे होगा? कोई शुक्ल-नासिका होगी, तो किसीकी नाक ताड़का-जैसी। ना मालती, कोई रास्ता नहीं। सब ऐसे ही चलेगा। बस, जिसे जीना हो, वह किसीकी चिंता न करे, मौत की भी चिंता न करे। बस जिये जाय। जो जियेगा वही सुंदर होगा।”

दोनों बहनें स्तंभित रह गईं। ललिता बोली, “जीजी, तुम इतना जानती हो?”

शशि ने मुस्कराकर कहा, “कहां? मैं तो अलजबरा तक नहीं जानती।”

कहकर वह स्वयं हँस पड़ी। बोली, “अरे हां, उस नरेश की सगाई

कहां से आई है ?”

“आगरा के एक ठेकेदार हैं ।”

“बहुत पैसेवाले हैं ?”

“तभी तो सगाई हुई है । लड़के की पढ़ाई का सारा खर्च लड़की वाले को देना होगा । सुना है, कार भी देंगे ।”

“तो यों कहो, लड़का बेचा गया है ।”

“और बेचना भी ऐसा कि खरीदार माल को छू नहीं सकता ।”

“लड़की कैसी है ?”

ललिता ने कहा, “जीजी से पूछो । वह देख आई है ।”

“क्यों री, तू कैसे गई थी ?”

“मैं क्या, मोहल्ले की बहुत-सी स्त्रियां गई थीं । बड़ी भारी मिलनी हुई थी । पांच हजार नकद दिये । दस रुपए और एक कप मुझे भी मिला था ।”

“अरे बाप, यह सब क्या है ?”

“पैसे का खेल !”

“और पैसा सदा मूर्खों के पास रहता है ।”

शशि ने कहा और हँस पड़ी । दोनों बहनें एक बार फिर स्तब्ध-अवाक् उसका मुंह देखती रह गई । यह शशि कितनी स्वतंत्र और कितनी निर्भीक है ! मालती के मस्तिष्क में सहसा एक विचार कौंध आया कि वह अवश्य उस संपादक से विवाह कर लेगी ।

तभी शशि बोली, “अरे मालती, तुमने यह तो बताया नहीं कि वह लड़की कैसी है ।”

मालती ने जवाब दिया, “अच्छी है, न सुदर कह सकते हैं और न असुंदर ।”

“हं, तो बुरी है ?”

“नहीं-नहीं, बुरी नहीं लगती ।”

“तुम्हें शादी नहीं करनी है । मैं इंजीनियर साहब की बात कह रही हूँ ।”

ललिता ने चोट की, “वह लड़की से शादी नहीं कर रहे जीजी, रुपए

से कर रहे हैं।”

ललिता के स्वर में न जाने क्या था कि शेष दोनों युवतियां हँसना चाहकर भी नहीं हँस सकीं। उसे देखती रह गई। ललिता ने फिर कहा, “विश्वास न आता हो तो अपनी आंखों से देख लो।”

शशि उठते-उठते बोली, “अच्छा। मैं घर होकर अभी पहुंचती हूँ।”

चार

बैरिस्टर बुधवार सुपरिचित हैं—कुछ ठिगने, कुछ मोटे, कुछ गोरे। जवानी में शायद सुंदर रहे होंगे, पर अब आंखों के नीचे गड्ढे पड़ गए हैं और उनको अंकित करनेवाली काली लाइनें इतनी उभर आई हैं कि सहसा देखकर रंग का भ्रम होता है। हँसे शायद एक युग बीत चुका है। बातचीत करते हैं तो आंखों में क्रूर मुस्कान भलक उठती है।

नरेशकुमार बिल्कुल उलटे पड़े हैं। रंग श्यामल, कद लंबा और बदन छरहरा। नक्श तीखे हैं। पैसे को दांत से पकड़ते हैं। मानते हैं कि जीवन की सफलता का वह एकमात्र आधार है। आज इन्हींकी सगाई आई है। कोठी पर नाना-रूप स्त्री-पुरुष नाना वेशभूषाओं में जाने कहां-कहां से आकर वहां इकट्ठे हो गए हैं। कोलाहल है। बच्चे मुक्तमन इधर-उधर किलकारी मारते दिखाई देते हैं। बाहर फिल्मी संगीत अबाध गति से बह रहा है। अदर शरबत की रेलपेल है। बीच-बीच में हँसी से मडित कानाफूसी सुनाई दे जाती है। एक सज्जन ने धीरे-से अपने साथी से पूछा, “कितनी देर है साहब?”

जैसे नरेशकुमार उन्हींकी राह देख रहे थे। उसी क्षण वह आसन पर बैठते हुए दिखाई दिए। कोलाहल शान्त होने लगा। कुछ देर मंत्रध्वनि गूँजी। फिर पास के बड़े कमरे के द्वार खुले। उसमें से एक-के-बाद एक सज्जन हाथों में थाल और दूसरी वस्तुएं लिये आगे बढ़े। वे उन वस्तुओं को सबसे पहले बैरिस्टर साहब के सामने पेश करते, फिर सभ्य उपस्थित सज्जनों को दिखाते हुए दूसरे कमरे में ले जाते। बैरिस्टर साहब

के मुख पर एक-के-बाद एक रंग आता। वह मुस्कराते, हँसते और बोल उठते, पूरे एक सौ पचास हैं।

देखा—किसी में मेवा है, किसी में मिठाई। कुछ फलों से भरे हैं, कुछ खिलौनों से। जोड़े हैं, गहने भी हैं। फाउटॅनपेन और घड़ी को लोग देखते और सराहते हैं। चाय, काफी, शरबत सबके अलग-अलग सेट हैं। सोफा-सेट के अतिरिक्त हीटर, बिजली का पंखा, आइरन, लैंप और कैमरा सभी कुछ तो है। कुछ ऐसी वस्तुएं भी हैं, जिनका नाम हर किसीको नहीं मालूम।

एक प्रौढ़ सज्जन ने अचरज से कहा, “गहरा हाथ मारा है।”

तड़पकर दूसरे बोले, “जनाव, लड़की बदसूरत न हो तो मेरा नाम बदल देना !”

पं० गणेशदत्त भी बड़े ध्यान से देख रहे थे, वह लाला रविशंकर से बोले, “यह देखकर जी में आता है कि अपनी लड़कियों का गला घोट दूँ।”

रविशंकर ने तलखी से जवाब दिया, “ये समाज के स्तम्भ हैं !”

“और समाज में बैठकर सादगी और अपरिग्रह का उपदेश देते हैं।”

“कोई इनकी गरदन नहीं पकड़ता।”

“कोई चूं तक नहीं करता।”

वातावरण काफी गरम हो आया था कि सहसा उनकी ओर मुंह करके एक युवक बोल उठा, “मैं तैयार हूँ, आप मेरा साथ दीजिए।”

स्वर अपरिचित था। सहसा एक साथ कई व्यक्तियों ने उसकी ओर दृष्टि उठाई, देखा—वह एक मुक्त, पर दृढ़ मुद्रावाला युवक है। आंखों में तेज है। नक्श काफी तीखे हैं। रंग सलोना और बाल कुछ धुंधराले हैं।

एक खद्दरधारी बधु ने, जिनकी गांधी टोपी नाक के साथ समकोण बना रही थी, पूछा, “आपका परिचय ?”

युवक बोला, “मैं आप सबके लिए अपरिचित हूँ। आज ही इस नगर में आया हूँ।”

“कहाँ रहते हैं ?”

“अज्ञात।”

“क्या करते हैं ?”

“सम्पादक हैं ।”

“ओह !” एक दुबले-पतले गोरे-गोरे लालाजी बोल उठे, “तभी आप इतने निडर हैं ।”

किसीने पीछे से पूछा, “आप कौन-से पत्र के संपादक हैं ?”

“साप्ताहिक ‘सदीप’ के ।”

लोगों की दृष्टि में जो कौतूहल था वह अब आदर में परिवर्तित हो गया । एक खद्दरधारी सौम्य युवक ने आगे आकर कहा, “क्षमा कीजिए । क्या आप ही श्री सुनील हैं ?”

“जीहां,” ‘सदीप’ के संपादक ने कुछ कौतूहल से कहा, “मेरा नाम सुनील है । आपका परिचय ?”

“गोपाल ।”

सुनील के नेत्र चमक उठे, “कहानीकार गोपाल ? खूब मिले । यहीं रहते हो ?”

क्षण-भर पहले जो अपरिचय था वह अब घनिष्ठ परिचय में परिवर्तित होगया । उधर थालों का वह उबा देनेवाला क्रम भी समाप्त हो चला था । उपसंहार के रूप में थैलों में बंधे दस-दस लड्डू सबको भेंट किये जा रहे थे । लोग उठने लगे ।

तभी किसीने संपादक सुनील की बांह पकड़कर खींची और बैरिस्टर साहब से परिचय कराते हुए कहा, “देखिए बैरिस्टर साहब, यह ‘सदीप’ के संपादक कलकत्ते से आये हैं । अपने गोपाल के मित्र हैं ।”

बैरिस्टर की कृपाचक्र से धिरी आंखें चमक उठीं, “आप सम्पादक हैं ?”

“जी ।”

“मुझे आपकी जरूरत थी । आपने शरबत पिया ?”

और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना पुकारा, “अरे भाई, फालसे का शरबत भोजना !”

फिर सुनील की ओर मुड़े “उफ़, बड़ी गरमी है ! आपने कलकत्ते से मानसून छोड़ा या नहीं ?”

सुनील ने धुआं उड़ाते हुए कहा, “आज क्या कम वर्षा हुई है ?”

“ओहो हो,” बैरिस्टर खिलखिलाए, “आपको पसन्द आया ? क्या बताऊ ? जो कुछ कहा था, उसका आधा भी नहीं भेजा !”

“अभी तो वर्षा शुरू हुई है, बहुत दिन पड़े हैं।”

बैरिस्टर और भी हँसे। आस-पास के व्यक्ति भी हँसे। तभी नरेश को देखकर बैरिस्टर ने कहा “अरे नरेश, यह कलकत्ते के ‘संदीप’ के संपादक आये हैं। तुम्हें क्या छपवाना है ? हम लोगों को हिन्दी नहीं आती, इनसे लिखवा लो।”

नरेशकुमार खिल उठे, बोले, “आप खूब मिले ! आपसे बहुत काम लेना है। विवाह का निमन्त्रण-पत्र लिखवाना है। अभिनन्दन-पत्र आपसे अच्छा कौन लिखेगा ? और हां, पिताजी की ओर से आशीर्वाद तथा जीजा-जी की ओर से मंगल-कामना—ये सब भी आपको तैयार करने होंगे।”

“अरे, तो आज या कल इनको खाने पर बुला लो।”

“जीहां, यह ठीक है !” नरेश ने कहा और फिर सुनील की ओर मुड़कर तपाक से पूछा “कहिए, आप कब आ रहे हैं ?”

“जी, कभी नहीं।”

इस अप्रत्याशित आकस्मिक उत्तर में एक अजीब तलखी थी। विस्मित-विमूढ़ वे लोग देखते ही रह गए, परन्तु गोपाल ने स्थिति को सम्हालते हुए कहा, “इनका प्रोग्राम बड़ा अनिश्चित है। हो सकता है अभी जाना पड़े।”

“ओहो !” नरेश ने कहा, “मैं समझा। तो गोपाल, तुम इनसे बातें कर लेना।”

“आप चिंता न करें !”

तबतक प्रायः सब लोग जा चुके थे। स्वयं बैरिस्टर भी खिसक गए। सुनील ने भी जाने की आज्ञा चाही। कहा, “आपको बधाई देता हूँ। क्षमा करिए, बिना बुलाए चला आया था।”

“आपकी कृपा है,” नरेश हँसे, “आप तो संपादक हैं।”

और जब वह लौट गए तब उसने अपने मन की समस्त घृणा बटोर कर कहा, “गधा, जाहिल, बेवकूफ, ईटियट, पिगहैडेड...”

वह अपनी गालियां पूरी भी नहीं कर पाया था कि उसने पास ही किसीका अट्टहास सुना। वह मुड़ा तो बैरिस्टर साहब को पाया। उन्होंने

हँसते हुए कहा “बस, घबरा गए ! इस प्रकार भावनाओं के गुलाम बनोगे तो कामयाबी कैसे हासिल करोगे ?”

नरेश ने सहसा कुछ जवाब नहीं दिया । बैरिस्टर बोले, “सवेरे उसके पास जाना ।”

“जी !”

“और लिखने-विखने की बातचीत मत करना ।”

“जी !”

“बस,” बैरिस्टर ने अर्थगर्भित ठंडे स्वर में कहा, “दुनिया में एक ही बात हो सकती है—भावनाओं की गुलामी या इच्छा की पूर्ति । आदमी को पत्थर बनकर जीना चाहिए ।”

फिर अर्थभरी हँसी हँसकर बोले, “मजा यह कि ‘संदीप’ में शादी के विस्तृत समाचार छपें और मैं जानता हूँ कि वे छपेंगे, जरूर छपेंगे ।”

बैरिस्टर के इस अमिट विश्वास ने नरेश को मुग्ध कर दिया । प्रफुल्ल-मन कहा, “मैं सब समझता हूँ, पिताजी !”

पांच

मारी-कक्ष में शशि सहेलियों को हूँद रही थी । मालती और ललिता उसके साथ थीं । सहसा उनकी दृष्टि नीलम पर पड़ी—गौर वर्ण, लम्बे-पतले नयन, शुक-नासिका, रक्ताभ अधरोष्ठ, आरक्त कपोलों पर ठिठकी हुई मुस्कान, उन्नत ललाट, धनुषाकार भौहें और लम्बे घुंघराले काले केश । वह एक ओर, अपेक्षाकृत कम बोलनेवाली स्त्रियों में, बैठी थी । शशि को देखते ही तड़प उठी, “कब आई, जीजी ?”

शशि ने व्यंग्य से कहा, “मेरे आने की सूचना तीन लोक में फैल चुकी है । तुम्हें तक नहीं पहुँची ?”

नीलम सुन चुकी थी, लजाकर नीचे देखने लगी । शशि ने ठोड़ी पकड़कर कहा, “देखती हूँ मेरी बुद्धि में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । अरे, कल ही तो आई हूँ । आ इधर आ, कहां छिपी हुई बैठी है !”

मालती ने हँसकर कहा, “न-न, शशि ! उसे न छूना, मुरझा जायगी।”
 “ओ, यह बात है ! तो भई, मैं चली।”
 वह मुड़ी कि नीलम ने विह्वल स्वर में कहा, “जीजी !”
 और नीलम उस दल में जा मिली। शशि ने पूछा, “हां री बता, कुछ हुआ तेरा ?”

“क्या जीजी !”
 “ओहो, मेरी रानी जैसे कुछ जानती ही नहीं।”
 शशि ने अट्टहास किया, फिर उसकी ठोड़ी को ऊपर उठाकर कहा,
 “मैं पूछती हूँ कि सपनों में आनेवाला कहीं मिला ?”
 नीलम एकदम लजाकर बोली, “हटो भी ! मुझे क्या पता ?”
 “हमसे बनती है।”
 “जीजी !”
 “बता, नहीं तो शोर मचाती हूँ।”
 नीलम कांप-कांप आई। सदय नेत्रों से शशि की ओर देखा और कहा,
 “सुना तो है।”

“कहां ?”
 “पता नहीं।”
 “ऊंहं...”
 “सच कहती हूँ, जीजी !”
 “बुद्ध, तुम्हारे जीने से धरती को क्या लाभ ?”
 मालती बोली, “अरे शशि, छोड़ इस बेचारी को ! चल उधर देख,
 सगाई में क्या-क्या आया है !”

ललिता ने कहा, “बाप रे, इतना पैसा है लोगों के पास !”
 शशि ने कई क्षण बाद सब-कुछ देखकर मालती से पूछा, “क्यों री,
 तेरे विवाह के लिए तो इतना काफी होगा ?”

मालती ने चकित होकर कहा, “भेरे ?”

“जी हां।”

“क्या कहती हो ! कोई सुन लेगा तो...”

“सुन लेगा तो सुन लेगा। मैं क्या चोरी करने को कहती हूँ ? चोरी

तो यह है...”

मालती भय से कांप आई। चारों ओर देखा। सौभाग्य से आस-पास कोई विशेष व्यक्ति नहीं था। बोली, “शशि, तुम कैसी बातें करती हो?”

“जैसी उचित है”, उसी निर्भीकता से शशि ने उत्तर दिया, “यह फैला हुआ वैभव इस बात की सूचना देता है कि समाज में चारों ओर ठगों का बोलबाला है।”

तभी पास आती हुई एक स्त्री ने इन वाक्यों को सुना। निमिष-मात्र में मालती का चेहरा राख हो आया। उस स्त्री ने क्षण-भर रुक कर शशि को देखा और फिर कहा, “ठीक कहती हो बेटी, सबके मुंह सुरसा की तरह फैल गए हैं।”

शशि बोली, “इसीलिए हनुमान की आवश्यकता है।”

अप्रतिहिता ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी और कहा, “न बेटी, कलियुग के हनुमान भी दम्भी हैं। इस देश का कुछ नहीं हो सकता।”

और वह चली गई। बाद में जाना कि वह सुप्रसिद्ध समाज-सेवक डाक्टर शर्मा की पत्नी हैं। प्रान्त के सामाजिक क्षेत्रों में काम करती रही हैं। अब पति के साथ इधर हैं। शशि बोली, “लेकिन यह निराशा मुझे अच्छी नहीं लगती। यदि सुरसा है तो हनुमान को भी आना ही होगा। साहस चाहिए।”

अप्रतिभ-सी मालती बोली, “पर साहस करेगा कौन?”

“हम।”

शशि ने यह ‘हम’ इतनी इतनी दृढ़ता से कहा कि उसकी सखियां अवाक रह गईं। दो क्षण बाद नीलम बोली, ‘जीजी, हम गरीब हैं और गरीबों के किये क्या कुछ होता है?’

शशि ने उत्तर दिया, “गरीबों के किये ही सबकुछ होता है, पगली! अमीर लोग मात्र क्रान्ति का कारण हैं।”

उसी समय कुछ वयोवृद्धाएं पास से चली गईं। सुना, एक कह रही थी, “अरे, काहे के रईस हैं! भिखमंगे हैं भिखमंगे। मांग कर लिया है।”

“पर अगले ने दिया क्यों?”

“अपनी गरज को।”

कुछ देर बाद शशि ने देखा, ये ही नारियां बैरिस्टर-पत्नी से कह रही थीं, “रिश्ता बराबर का है। जैसे आप हैं वैसे ही लड़की वाले।”

पत्नी बोली, “अजी, इससे बड़े-बड़े रिश्ते आ रहे थे, पर उन्होंने आपके धन्ना दे दिया। यह देंगे, वह देंगे, दिया आधा भी नहीं।”

“आय-हाय, बड़े चोट्टे हैं !”

“क्या पूछो जी ! अब तो न निगले बने, न उगले बने। वह बात है कि अपना मरण जगत की हाँसी।”

शशि सुन रही थी। तुरन्त बोल उठी, “यह कैसे जी ? अगर उन्होंने बचन पूरा नहीं किया तो सबकुछ लौटा देना चाहिए।”

बेगानापन शशि को कहीं बांधता न था और यही उनके लिए अप्रत्याशित था। सिहर उठीं। उस एक लमहे में उनके चेहरों पर कई बार रंगों का प्रत्यावर्तन हुआ। किसी तरह हँसने की चेष्टा करते हुए बैरिस्टर-पत्नी ने कहा, “तुम नहीं जानती बेटी, दुनिया में रहकर बहुत-कुछ सहना पड़ता है।”

मन में वह भी बड़ी भुंभुला रही थी। परन्तु कुछ क्षण पूर्व उत्सव के काम में शशि उनका काफी हाथ बंटा चुकी थी, इसलिए आंखों में उसी की लज्जा शेष थी। शशि उनकी बात का जवाब देती, इससे पूर्व ही नीलम तेजी से वहां आ पहुँची। बोली, “जीजी, मां बुला रही हैं।”

और उसे खींचती हुई ले चली। चली गई तो बैरिस्टर पत्नी ने मुंह बिचकाकर कहा, “बड़ी मुंहजोर लड़की है।”

“अजी नौ घाट का पानी पिये फिर है। पेशावर रह चुकी है।”

“पठान है, पठान !”

“ऊँह, पठान के तो पैर का धोवन भी नहीं। पठान हों हैं गोरे-चिट्टे, पहाड़; यो है काली कलूटी सींक-सलाई।”

विजय-गर्व से जैसे सब हँस पड़ीं। उधर शशि जब नीलम की मां के पास पहुँची तो ललक कर उन्होंने उसे छाती से लगा लिया। बोली, “नीलम ने अभी बताया कि तू यहीं आ गई है। रहेगी ना ?”

“रहूंगी चाची।”

“तो आइयो। चाची गरीब है तो क्या...”

शशि एकबारगी ही बोल उठी, “अभी चलती हूँ। ललिता, तू भी आ, और कहां है मालती ? आज चाची के घर वह तूफान मचाना है कि ये भी याद रखेंगी। जबतक यह न कहलवा लूंगी, ‘लड़कियो, अपने घर जाओगी कि नहीं,’ तबतक न टलूंगी।”

कहकर शशि हँसी नहीं, हँसी नीलम, पर वह हँसी आंसुओं में भीग आई थी और उसकी गंध से सारा वातावरण महक उठा था। कई क्षण बाद बाहर आई तो पाया कि मालती दो अपरिचित युवकों से बात कर रही है। वह दोनों से अपरिचित थी। जब चले गए तो शशि ने पूछा, “कौन हैं ?”

मालती ने बताया, “हमारे गोपाल दादा हैं।” पंजाब से आकर इधर रहने लगे हैं। लेखक हैं।”

“ओह, ये हैं गोपाल। ये तो बहुत सुन्दर लिखते हैं और यह दूसरे कौन थे ?”

इस बार नीलम बोली, “ये कलकत्ते रहते हैं। बैरिस्टर साहब के घर इनकी चर्चा हो रही थी। सम्पादक हैं।”

“किस पत्र के ?”

“‘सदीप’ के। नाम है सुनीलकुमार।”

“क्या ?” शशि एकाएक कांप उठी। निमिष-मात्र में वह बेगानी हो गई। एक रंग आता, एक जाता। बहुत प्रयत्न किया, पर असमर्थता के बोध से मुक्ति न पा सकी। मालती ने सबकुछ देखा, मुस्कराई। फिर कन्धे पर हाथ रखकर धीरे से कहा, “तो यह बात है !”

“सच मालती, मुझे कुछ भी पता नहीं।”

“भाईसाहब ने बुलाया होगा।”

“मैं नहीं जानती।”

“तूने देखा ?”

“आंखें बन्द नहीं थीं।”

“पसन्द हैं ?”

“पगली। बहुत पहले सौदा कर चुकी हूँ।”

इतनी देर में शशि ने अपने को पा लिया था। मालती स्तब्ध रह

गई। कहीं भय नहीं, शंका नहीं, द्विविधा की छाया तक नहीं। एकान्त पाकर फिर पूछा, “सच बता, बात कहां तक पहुँची है?”

“पगली, बात समाप्त हो चुकी।”

“भैया राजी हैं?”

“होना पड़ा।”

“तुझसे पूछा था।”

“मैंने स्वयं कहा था।”

“हाय राम!”

“दुत पगली! इसमें बुरा क्या है?”

“भाई-भाभी ने कुछ नहीं कहा?”

“भाई लाल-पीले हुए। भाभी ने वेश्या तक कह डाला। उसके बाद दोनों राजी हो गए।”

“राजी हो गए?”

“होते क्यों नहीं। हम जो चाहते हैं।”

“विवाह कब होगा?”

“पन्द्रह दिन बाद दिल्ली में।”

मालती अब मौन हो गई। मस्तिष्क में समुद्र-मन्थन जैसा कोलाहल उठता आ रहा था और शशि थी कि उसी तरह शान्त-निर्द्वन्द्व नीलम की मां से बातों में उलझती जा रही थी। कुछ ही क्षणों में उसने वह तूफान पैदा किया कि हँसी-हँसी में मां को कहना पड़ा, “शशि, तू तो बड़ी नटखट हो गई है।”

शशि तुरन्त द्वार की ओर मुड़ी, कहा—“मैं चली चाची, नमस्कार!”

नीलम की मां धक्, ऐसी कि काटो तो खून नहीं। हकलाती हुई बोली—“अरे-अरे रुक, मैं तो हँसी कर रही थी।”

“और मैं जैसे रो रही थी।”

बहुत देर बाद जब वे घर लौट रही थीं तब मालती ने शशि से कहा—“शशि, तुम सचमुच साहसी हो। हम तो कुछ भी नहीं कर सकते।”

शशि ने सहसा मालती को कसकर बांहों में भर लिया। बोली—“ऐसा मत कह। न, ऐसा मत कह, मालती। जी छोटा करने से बड़ा

कोई पाप नहीं होता । तू सब-कुछ कर सकती है ।”

उस रात सारा समय मालती शशि के स्वप्न देखती रही ।

छः

पन्द्रह दिन बाद नीलम ने सत्येन्द्र को पत्र लिखा :

“भैया,

शशि का विवाह हो गया । आर्य मैरिज वेलिडेशन ऐक्ट के अनुसार दिल्ली में रजिस्ट्री हुई है, क्योंकि वर ब्राह्मण है, वधू अग्रवाल । लेकिन यह सब इतना आश्चर्यजनक नहीं है । आश्चर्यजनक है कि केवल पत्र लिखते-लिखते एक-दूसरे को वर-वधू मिल गए । शशि कहानी लिखने लगी है । उसने कुछ दिन पूर्व एक कहानी ‘संदीप’ के सम्पादक को भी भेजी थी । वह कहानी सम्पादक को इतनी पसन्द आई कि पत्र-व्यवहार चल निकला और फिर एक दिन प्रेम में परिणत हो गया । विवाह से पूर्व वर-वधू में से किसी ने भी एक-दूसरे को नहीं देखा था ।

और भैया, शशि के पति बिल्कुल शशि पर पड़े हैं—वैसा ही सांवला रंग, वैसा ही तीखे नक्श, वैसा ही वाक्चाल और वैसा ही निडर । नहीं जानती, लोग कैसे इतने साहसी हो जाते हैं ! पीठ-पीछे सब गालियां देते हैं, लेकिन सामने उनकी प्रशंसा करते हैं । कभी कभी सोचा करती हूं कि शशि इतना साहस कैसे कर सकी ! जब सोच चुकती हूं तब उसे प्यार करने को जी चाहता है । वह है ही प्यार करने लायक । तुम्हें कैसा लगा, यह लिखना । और आ सको तो आना । मां कुछ आवश्यक बातें करना चाहती हैं ।...”

इस आवश्यक शब्द के बाद और कुछ लिखते न बना । सहसा उसे लगा, जैसे कहीं से आकर सत्येन्द्र उससे कह रहा है—“नीलम, तू भी शशि के मार्ग पर चल सकती है ।”

नीलम सहसा कांप-कांप आई—क्या...क्या वह ऐसा कर सकती है ! नहीं-नहीं, एकदम अकल्पनीय है, अविश्वसनीय । वह कभी ऐसा नहीं कर

सकती ।

“क्यों नहीं कर सकती ! तुम क्या शशि से किसी बात में कम हो ?”

“मैं उससे किस बात में कम हूँ ? हां, किस बात में कम हूँ ?”

अनगूँज मानो अन्तर में जा बैठती है । वहीं से बोलती है, “कम नहीं, एक बात में तुम निश्चय ही बढ़कर हो । तुम सुन्दर हो ।”

“सुन्दर ! मैं सुन्दर हूँ ।” नीलम हड़बड़ा कर दीवार पकड़ लेती है,
—“मैं सुन्दर हूँ... मैं सुन्दर हूँ...”

वह बार-बार दोहराती है और फिर उसके मस्तिष्क में एक-के-बाद-एक अनेक कहानियां उभरने लगती हैं—कितने युवकों ने उसे प्यार-भरी निगाहों से देखा है । कितने प्रलोभन उसने ठुकराये हैं । राह रोक कर कितने शौकीन उससे बातें करने की इच्छा प्रकट करते रहे हैं, परन्तु विवाह का प्रस्ताव लेकर कोई भी तो आगे न आ सका । वे सब भूखे थे, प्रेमी कोई नहीं था । वे सब उसे चाहने का नाटक करते थे, पर अपना बनानेवाला कोई नहीं था ।...

नीलम को याद आता है कि एक दिन एक युवक एकबारगी तेजी से उसके पास आया । दोनों हाथों से उसके कन्धे पकड़कर झुकभोरा और फिर बिना इधर-उधर देखे भागता चला गया । हतभागिनी-सी वह चीख भी न सकी । मां सब-कुछ देख रही थी । तड़पकर रह गई, क्योंकि उसके विरोध का कोई मूल्य नहीं था । समाज के जो स्तम्भ हैं, उन्होंने यही कहा था, “वेश्या जैसी है । उसकी बेटी को किसीने छेड़ दिया तो क्या अनर्थ हो गया ! यह रूप आखिर किस काम आयगा ?...”

नीलम सहसा उद्वेलित हो उठती है । गालों पर आंसू ढुलक आते हैं । बड़ी देर तक होंठ फड़कते हैं, वक्ष उफनता है । तिल-तिल कहानी याद आ जाती है—जब उसके पिता का देहान्त हुआ था तब वह दूध-पीती बच्ची थी । दो वर्ष उपरान्त मां ने दूसरा विवाह कर लिया । नये पति मां के पूर्व पति के मित्र और जाति के मुसलमान थे । परन्तु विवाह करने से पूर्व वह विधिवत् रहमानअली से धर्मप्रकाश बन गए थे । आर्य समाज के रजिस्टर में उनका नाम अब भी मौजूद है । वह कैसे भी रहे हों, पर नीलम की मां के प्रति जीवन की अन्तिम सांस तक सच्चे रहे ।

धनी नहीं बन सके। समाज में घुल-मिल भी नहीं सके। निरन्तर संघर्ष करते-करते उनका शरीर टूट गया। एक दिन अचानक लू खाकर घर लौटे तो फिर जीते-जी बाहर नहीं जा सके। नीलम तब दस वर्ष की हो चुकी थी। सत्येन्द्र बारह का था। गृहस्थी का बोझ एक बार फिर मां के कंधों पर आ पड़ा। उसे ऐसे समाज के सामने खड़ा होना पड़ा, जिसने उसे कभी स्वीकार नहीं किया था। परन्तु सब मान-अभिमान गला कर सन्तान की खातिर मां ने क्या नहीं सहा। घर-घर जाकर चौका संभालती, दाल बीनती, आटा पीसती, घर लौटकर कपड़े सीती, कागज के लिफाफे बनाती...

नीलम को ये सब बातें एक साथ इसलिए याद आ रही हैं कि वह यह जान लेना चाहती है—शशि उसके स्थान पर होती तो क्या करती ! जीवन के इस मर्मन्तक अपमान का बदला कैसे लेती ? कैसे इस सामूहिक तिरस्कार का प्रतिवाद करती ? और जो कुछ शशि करती उसे वह क्यों नहीं कर सकती ! क्यों आखिर क्यों, कुछ लोग किस्मत में दुःख ही लिखा कर लाते हैं ? क्यों सदा सहते ही हैं ?

इतने में मां ने आकर सहज भाव से पूछा, “नीलम, सत्येन्द्र को आने के लिए पत्र लिखा ?”

नीलम ने एकाएक सुना नहीं। हड़बड़ाकर पसीना-पसीना हो आई। अनबूझ-सी बोली, “भैया को पत्र लिख रही थी मां।”

“एक पत्र शशि को भी लिख दे।”

“शशि को ?”

“हां, उस पगली को अभीतक आशीर्वाद नहीं भेज सकी।”

कहकर मां रुकी नहीं, चली ही गई। नीलम कई क्षण स्तब्ध-सी मां के तने हुए शरीर और नपे-तुले हड़ शब्दों की याद करती रही। फिर मुस्कराकर शशि को पत्र लिखने बैठ गई।

सात

मालती की मां ने यह समाचार सुना तो अवाक् रह गई। आटा मल रही थी, हाथ वहीं-का-वहीं रुक गया। आंखें फाड़े पति को देखती ही रह गई। कई क्षण बाद सिर हिलाकर कहा, “ना बाबा, आजकल मां-बाप की कोई कीमत ही नहीं रह गई है।”

रामनाथ बोले, “शशि के मां-बाप नहीं हैं।”

“भाई-भावज तो हैं, कुल-जाति तो है। क्या हिन्दू-घर की बहू-बेटियों को ऐसा करने की आज्ञा है?”

“नहीं है, तुम ठीक कहती हो। पर जो इस आज्ञा को तोड़ सकती हैं, वे सचमुच साहसी हैं और साहसी व्यक्ति कभी बुरा काम नहीं कर सकता।”

मां और भी हतप्रभ हो उठी। कण्ठ तीक्ष्णतर हो आया, “बुरा क्यों नहीं कर सकते! करते हैं और उससे समाज की नाक कटती है।”

“लेकिन वे तो सुखी रहती हैं।”

“आहा! नीलम की मां कितना सुख भोग रही है?”

“नीलम की मां गरीब है।”

“सभी गरीब होते हैं। अमीर कितने हैं? और जो हैं, वे समाज में नहीं हैं, समाज पर हैं।”

लाला रामनाथ ने सहज भाव से बात काटकर कहा, “तुम कहना चाहती हो कि वे असमर्थ हैं और समर्थ को कौन दोष दे सकता है? पर मालती की मां, साहसी व्यक्ति से अधिक समर्थ कोई नहीं होता।”

“तो तुम भी कुछ साहस करो न?” मां अनायास ही कह गई। कह चुकी तो दंश का अनुभव कर अपराधिनी हो आई। पर पति पूर्ण शान्त थे। बोले, “बात मेरी नहीं, शशि की थी। समाज उन्हींको पूजता है जो विद्रोह करते हैं। जो समाज की पूजा करते हैं, वे सदा दुःखी रहते हैं।”

अविश्वास से मां ने अपने पति की ओर देखा। वह कुछ समझ नहीं पाई। चुपचाप आटा गूंधती रही...कई क्षण बाद अपने को संभाल कर उसने पूछा, “उनका क्या जवाब आया?”

“जो आशा थी ।”

“क्या ?”

“दो हजार नगद, चार जोड़े, रेडियो, मशीन, साइकिल, ड्रेसिंग, टेबल, इत्यादि-इत्यादि ।”

मां ने उद्विग्न कण्ठ से कहा, “क्या इन्होंने भी इतना मांगा ?”

“क्यों, यह क्या औरों से कम है ?”

“अब क्या करोगे ?”

“साहस ।”

“साहस !” विस्मित-विमूढ़-सी वह सिहर-सिहर आई । लालाजी ने उसी दृढ़ता से कहा, “मैं उनकी सब मांगें मंजूर करे लेता हूं । लेकिन विवाह के अवसर पर...”

मां एकबारगी चीख-सी उठी, “क्या कहते हो ? वे भगड़ा नहीं करेंगे ?”

“जानता हूं । लेकिन यह भी जानता हूं कि संस्कार के बाढ़ बेटी पराई हो जाती है ।”

“लेकिन समाज के लिए मां के लिए कभी नहीं । तुम छल करोगे तो वह बेटी को तंग कर सकते हैं ।”

लाला रामनाथ शरारत से मुस्कराये । बोले, “जानता हूं, लेकिन यह भी जानता हूं कि लड़के को लड़की पसन्द है ।”

मां ने चकित-विस्मित अपने पति को देखा, देखती रही । आंखें भरकर देखती रही । वे ही फिर बोले, “आज के दिन सगाई जायगी । तैयारी करो !”

“तैयारी करूं ! सच !”

अमित विश्वास से उन्होंने जवाब दिया, “लड़का समझदार है । विश्वास कर सकता हूं कि मालती को धोखा नहीं देगा ।”

अब कुछ जानना शेष नहीं रहा । आनन्द-विभोर मां की आंखों में सजल मुस्कान भर आई । मालती सब-कुछ सुन रही थी । पिता का अन्तिम वाक्य सुनते-सुनते सुधि बिसरा बैठी । नयन मुंद गए । विमुग्ध-सी फुसफुसाई, “लड़का समझदार है, विश्वास कर सकता हूं कि मालती

को धोखा नहीं देगा । मैं भी विश्वास करती हूँ । हां, मैं भी विश्वास करती हूँ...”

कहते-कहते उसकी सांसों उत्तेजित हो उठीं । उन्मत्त उद्वेगों ने वक्ष को जकड़ लिया । लेकिन आत्म-रति का यह सुख अधिक देर तक नहीं टिक सका । ललिता उसे पुकारती हुई वहीं आ गई, “जीजी, गोपाल दादा आये हैं ।”

चौककर मालती एकबारगी ऊपर चली गई । इस शीघ्रता का कारण केवल यही नहीं था कि वह ललिता की दृष्टि से बचना चाहती थी, बल्कि शशि के विवाह के बारे में अधिक-से-अधिक जान लेने की उत्सुकता भी उसे उद्वेलित कर रही रही थी । जान चुकी तो बोली, “यहां तो दादा, तूफान आ गया है । सब लोग उसे बड़ी गालियां दे रहे हैं ।”

“अरे, यह तो हुआ ही करता है । जब प्रचलित रीति-नीति पर चोट की जाती है तो समाज में हलचल मचनी स्वाभाविक है । ठहरे पानी में कभी पत्थर मारकर देखा है ? कैसा हिलता है ?”

कहकर वह हँस आया और फिर एकाएक बोला, “मालती, तुम हैप्पी स्कूल की ट्रेनिंग लेना चाहती थीं न ?”

“हां-हां, मैं चाहती हूँ ।”

“इसी पहली तारीख से कोर्स शुरू होता है । मैंने तुम्हारे लिए एक स्थान सुरक्षित करा दिया है ।”

मालती प्रफुल्लित स्वर में बोली, “तो मैं मां से कहती हूँ ।”

लेकिन दूसरे ही क्षण उसे वह सब याद आ गया, जो अभी-अभी सुन आई थी । सहसा प्रदीप्त मुख अलसा गया । मन्द स्वर में बोली, “दादा, आप मां से कहेंगे ?”

“कह दूंगा ।”

“इस तरह कहना कि मना न कर सके ।”

“मना क्यों करेंगी ?”

“पूछ देखना ।” कहकर वह लजा-सी गई ।

गोपाल ने मुस्कराकर कहा, “अच्छा, तू भी शशि की श्रेणी में पहुंचने वाली है । पर कब और कहां ?”

“मुझे नहीं पता ।” मालती ने मुंह नीचा किये-किये जवाब दिया ।

“तो हम पता कर लेंगे । लेकिन हां, एक बात बताओ, तुम नीलम के बारे में कुछ जानती हो ?”

“क्या दादा ?”

“कि उसके पिता मुसलमान थे ?”

“नहीं दादा, वह उसके अपने पिता नहीं थे । मां के दूसरे पति थे । और विवाह से पूर्व हिन्दू बन गए थे ।”

फिर सब कथा सुनाकर पूछा, “बात क्या है ?”

“बात अच्छी नहीं है मालो ।” यह कहते हुए गोपाल के मुख पर विषाद की रेखाएं उभर आईं, ऐसी कि मालती डर गई । बोली, “क्या, क्या हुआ ?”

“मैंने उसके भावी पति को देखा है ।”

“फिर ?”

“वह एकदम काला, जड़-बुद्धि, स्थूलकाय, रोगी और वृद्ध है । पर पैसा विपुल है । सो...”

वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि सहसा दृष्टि द्वार की ओर उठ गई । पाया कि नीलम न जाने कब की आकर वहां खड़ी हो गई है । उस समय जैसे पृथ्वी अपनी धुरी पर एक क्षण रुककर तीव्र वेग से घूम-घूम उठी । सब-कुछ स्तब्ध, सब-कुछ सागरवत् । कई क्षण बाद नीलम ने पूछा, “किसकी प्रशस्ति हो रही है, जीजी ?”

मालती व्यस्त हो उठी । एक बार नीलम को देखा, फिर गोपाल को देखती रही । गोपाल ने मुस्कराकर कहा, “मैं मालती को एक वन-मानुष की कहानी सुना रहा था । उसके पास विपुल धन है । उसीके बल पर वह एक ऐसी रूप की देवी को अपनी पत्नी बनाना चाहता है, जो छूने से मैली होती है ।”

नीलम दर्द से हँसी, “जो छूने से मैला होता है उसके लिए वनमानुष ही ठीक है । लक्ष्मी उल्लू के साथ रहती है ।”

“नहीं, लक्ष्मी विष्णुप्रिया है ।”

“विष्णु तो लक्ष्मी की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते । पर

छोड़िये इस तर्क-जाल को, कहानी सुनाते चलिए ।”

“वह कहानी तुम्हारे सुनने के लिए नहीं है ।”

“क्यों ?”

“हर क्यों का जवाब देना आवश्यक नहीं होता ।”

नीलम ने उसी धीरता से कहा, “आवश्यकता की बात मैं नहीं जानती । आपकी सब बातें सुन चुकी हूँ ।” और फिर एकाएक भावुक हो उठी, “आप डरते क्यों हैं ? मैं नितान्त असमर्थ हूँ, सो निश्चय होकर मेरी चर्चा कर सकते हैं, मेरा मजाक उड़ा सकते हैं, अपमान कर सकते हैं । मैं इसी योग्य हूँ... इसी योग्य...”

आवेग की इस आकस्मिक तीव्रता से नीलम का साहस टूट गया । वह सुबकने लगी । मालती स्वयं बुरी तरह आक्रान्त थी, लेकिन नीलम को रोते देखकर वह तड़पकर उठी और उसे दोनों बांहों में भर लिया । जैसे छोटी बहन गिरकर चोट खा गई हो । बोली, “नीलम, नीलम चुप हो जा, मेरी बहन ! तूने ग़लत समझा । सुन, सुन तो !”

गोपाल अबतक स्थिर हो चुका था । बोला, “मालती, नीलम को सब-कुछ बताना होगा ।”

नीलम ने रोते-रोते कहा, “मैं सब-कुछ जानती हूँ ।”

“जानती हो तो कायर हो ।”

नीलम सहसा सिर उठाकर बोली, “इस लांछन को स्वीकार नहीं करती । पर पूछती हूँ कि आप लोग जो...”

फिर कण्ठावरोध हो आया । कुछ कह न सका । गोपाल उसी तीव्र स्वर में बोला, “मुझसे क्या पूछती हो ? पूछो अपने आप से । क्यों चुपचाप अत्याचार को सह रही हो ? क्यों अपनी बात कहने में डर लगा है ? क्यों अपने को इतना महत्व देती हो ?—जब इन बातों का जवाब मिलेगा तो समझ पाओगी ।”

और फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसने मालती से कहा, “अच्छा, मैं तुम्हारी माताजी से बातें करता हूँ ।”

मालती एकदम बोली, “अब कहने की जरूरत नहीं है ।”

“क्यों ?”

“मैं ट्रेनिंग नहीं लूंगी । नीलम लेगी ।”

गोपाल हठात् रुक गया और नीलम ने गीले नयन उठाकर मालती की ओर देखा । उसका सिर अब भी मालती की छाती पर था । उसने प्रतिवाद करना चाहा, पर वह असमर्थ का प्रतिवाद था । गोपाल एकदम नीचे उतरता चला गया । तब नीलम ने फिर कहा, “जीजी, स्थान तुम्हारे लिए सुरक्षित हुआ है, तुम क्यों नहीं जातीं ?”

“क्योंकि मैं जा नहीं सकती ।”

“क्यों ?”

“अभी तो कहा था, हर क्यों का जवाब नहीं होता ।”

और मालती हँस पड़ी । ऐसी हँसी कि लाज भी लजा जाय । लमहे-भर में नीलम सब-कुछ समझ गई और उसी क्षण पीड़ा न जाने कहां जाकर तिरोहित हो गई । हँसकर बोली, “यह बात है, जीजी । मुह मीठा कराओगी ।”

मालती ने चिढ़ाकर कहा, “अच्छी तरह धोकर आना !”

यह हँसी नितान्त क्षणिक थी । नीलम फिर मुरझा आई । कहा, “जीजी, मैं क्या ट्रेनिंग ले सकूंगी ?”

“क्यों ?”

“पैसे कहाँ हैं ?”

“पैसे का प्रबन्ध भी हो जायगा,” मालती हँसकर बोली, “मेरी बात का विश्वास न हो तो गोपाल दादा से कहलवा दूंगी ।”

नीलम एकदम उठ खड़ी हुई । बोली, “मैं जाती हूँ ।”

“जायगी कैसे, मेरी बुद्धो ! जिस बात के लिए आई थी वह तो तूने बताई ही नहीं ।”

और नीलम के पैर ठिठक गए ।

आठ

सत्येन्द्र ने घर लौटकर मां से कहा, “यह रिश्ता नहीं होगा, मां !”

“क्यों नहीं होगा ? नीलम का विवाह नहीं करना है ?”

“नहीं।”

“सत्येन्द्र, तू पागल हो गया है क्या ?”

“तुम्हारी बात सुनकर कोई पागल न हो तो अचरज ही होगा। ऐसे विवाह से नीलम अविवाहित ही अच्छी है।”

मां चिढ़ गई। कहा, “तू कुछ नहीं समझता, सत्येन्द्र। बाहर रहकर तेरी मति बिगड़ गई है।”

सत्येन्द्र ने एकाएक मां की ओर देखा। फिर शान्त स्वर में बोला, “यह बात नहीं है मां, मैं सब-कुछ समझता हूँ। तू नीलम के विवाह की चिन्ता मत कर !”

“भला रे सुनो तो, मैं न करूंगी तो और कौन करेगा ?”

“वह स्वयं।”

चकित-सी मां बोली, “वह क्या करेगी ?”

“कुछ भी करे, पर जो करेगी, उससे हमारी आज की प्रतिष्ठा में कोई कमी नहीं होगी।”

अपने ही बेटे के इस व्यंग्य-दंश से मां तिलमिला उठी। बोल नहीं सकी। सत्येन्द्र कई क्षण मां को देखता बैठा रहा। फिर बोला, “माफ कर दो मां ! तुम्हारा दर्द समझता हूँ। परन्तु चिन्ता मत करो। अखबार में विज्ञापन देने पर जरूर कोई अच्छा लड़का मिल जायगा। फिर भी मां, नीलम को कुछ काम करना ही चाहिए। जो गतिशील हैं, युग उनका स्वागत करता है।”

और फिर अपने तर्क को मानो स्पष्ट करते हुए उसने कहा, “मान लो अम्मां, आगे बढ़ने पर हमें मिटना भी पड़े तो भी अच्छा है। समाज तो जायेगा। हम क्या हैं, समाज के एक अंग हैं, संसार में क्षुद्रातिक्षुद्र कण। कण यों क्या है, पर बैज्ञानिक ने उसकी शक्ति की जो थाह ली है, उसके लिए अगु-बम का इतिहास पढ़कर देखना होगा।”

मन में दुःख का भण्डार भरा रहने पर भी मां हँस आई। पुत्र के ज्ञान पर उसे गर्व भी कम नहीं है। बोली, “अच्छा, यह तो तू करेगा; नीलम के बारे में क्या कहता है? उन्हें जवाब दे दूँ?”

“अवश्य।”

“आगे तू जाने!”

“जानने को क्या है! न जाने तू क्यों डरती है!”

नीलम पास के कमरे में बैठी हुई सब-कुछ सुन रही थी। उसे सुख मिला। सन्ध्या को एकान्त पाकर बोली, “भैया, एक बात पूछूँ?”

“आज्ञा है, शुरू करो!”

“मैं बच्चों को पढ़ाने की ट्रेनिंग लेना चाहती हूँ। दिल्ली रहना होगा।”

“शुभस्य शीघ्रम्। तुरन्त कर डालो!”

“करना तो चाहती हूँ, पर प्रश्न पैसे का है।”

“पैसे?”

“हां, मां इतना परिश्रम करती है, फिर भी पेट-भर को नहीं जुटा पाती...”

“बस-बस, पहले यह बता कि क्या तूने कहीं प्रार्थनापत्र भेजा है?”

“मैंने कुछ नहीं किया। मालती ने ही किया है। गोपाल भैया हैं न...”

“कौन गोपाल?”

“मालती के दूर के एक भाई हैं। प्रसिद्ध लेखक हैं।”

“पर उन्होंने तेरे लिए यह सब क्यों किया?”

“न भैया, मेरे लिए कुछ नहीं किया,” नीलम तत्परता से बोली, “मालती के लिए किया था, पर उसका विवाह निश्चित हो गया है, इसलिए मुझे अवसर मिल गया।”

सत्येन्द्र हँस पड़ा। “पर विवाह तो तेरा भी होगा।”

नीलम ने गर्दन उठाकर जवाब दिया, “मैं तो ट्रेनिंग लेकर पढ़ाऊंगी।”

“जनम-भर क्या पढ़ाती ही रहेगी?”

“जनम-भर की बात तो अभी नहीं सोची।”

“तो क्या सोचा ?”

“यही कि मां का भार हल्का हो ।”

“पगली ।” सत्येन्द्र भीग गया, “मां तेरी कमाई खायगी ?”

“जानती हूं, पर मैं तो अपनी कमाई खा सकती हूं ।”

अनायास ही सत्येन्द्र भावुक हो उठा, स्नेह से नीलम की पीठ थप-थपाकर वह मौन हो रहा । नीलम भी नहीं बोली । अपने उत्तर पर स्वयं चकित हो आई । मन में क्या-क्या आता है । यूँ वह बहुत कम बोलती है, इसीलिए बहुत अधिक सोचती है । चिन्तन में तारतम्य न-बराबर होता है, क्योंकि केवल अभाव ही तो उसकी संचित पूंजी है । अभाव क्रान्ति का कारण हो सकता है, पर शर्त विवेक की है, नहीं तो वह अक्सर, अपने पर ही अत्याचार हो जाता है । नीलम बेचारी छुई-मुई, क्रान्ति को क्या समझे । बस, मां का दुःख उसे सालता है । समाज की घृणा उससे नहीं लीली जाती । अगर उनके पाम पैसा होता तो क्या उसके विवाह का प्रश्न इतना उलझता ! लेकिन विवाह क्या होना ही चाहिए ! पति क्या होता है, कैसे मिलता है, क्यों मिलता है—इन सबका एक ही उत्तर वह सुनती आ रही है—सदा से ऐसा ही होता आया है । लड़की का विवाह होता है, फिर मां बनकर वह सार्थक होती है । यह क्रम अनन्त और अनादि है । इसकी थाह नहीं ।

थाह लेने का वह प्रयत्न भी नहीं करती । इतना ही जानती है कि छाती में एक हूक-सी उठती है । लगता है कि जैसे कोई स्पर्श उसे इस दर्द से मुक्त कर देता । कोई इसे पीस देता । कोई, जो अभी अपरिचित है । अभी दूर है...

नीलम अनजान नहीं है, परन्तु उसका ज्ञान उस सीधे-सादे बैल का ज्ञान है, जो लीक पर चलना जानता है । उसे कोई गलत लीक पर डाल दे तो वह उसीपर चलता चला जायगा ।...

सहसा सत्येन्द्र ने मौन भंग किया, “नीलम, मैं तुमसे एक बात कहता हूं ।”

“क्या ?” नीलम हठात् चौंक पड़ी ।

“मैं तुम्हारे लिए पैसे का प्रबन्ध कर दूंगा, पर एक शर्त है...”

“क्या ?”

“डरो मत । डर मनुष्य का एकमात्र शत्रु है ।”

नीलम को बड़ा अटपटा-सा लगा । अनबूझ-सी उसकी ओर देखती ही रही । सत्येन्द्र कहता जा रहा था, “केवल जीने में कुछ रस नहीं है । हमें जीवन का निर्माता होना चाहिए...और यह तभी हो सकता है जब हम स्वयं को महत्व न दें ।”

नीलम यन्त्रवत् बोल उठी, “तो किसे दू ?”

“मनुष्य को ।”

कहकर सत्येन्द्र रुका नहीं । चला गया यहीं पर वह ‘उपदेशक’ बेहद कमजोर है । नीलम अकेली बहुत देर तक विचारों के आलजाल में उलझी वहीं बैठी रही । जब मां का स्वर कानों में पड़ा तो एकबारगी सिहर उठी । मां कह रही थी, “तुझे क्या होता जा रहा है ?”

“कुछ भी तो नहीं, मां । भैया से बातें कर रही थी । वह अभी गये हैं ।”

“जानती हूँ, दो घंटे हो चुके हैं । चल उठ, मैं बैरिस्टर साहब के घर जा रही हूँ ।”

“मां ।” नीलम एकदम बोली, “वहां न जाओ !”

“क्यों ?”

“वे बड़े आदमी हैं ।”

“तभी तो जाती हूँ ।”

“मां !”

“जा-जा, रसोई देख । बहुत बड़ी न बन । सपने देखने की मेरी उम्र कभी की बीत चुकी ।”

मां चली गई । नीलम को रसोई में जाना था, पर उसका सोचना समाप्त नहीं हुआ और लीक से हटने के प्रयत्न में उसने उस दिन दाल में नमक नहीं डाला । रायते में हल्दी डाल दी और अधिकांश रोटियां जल गईं । मां ने देखकर माथा फोड़ लिया । बोली, “नीलम, सोचने से दुनिया नहीं चलती । तू बड़ी हो गई है । दूसरे के घर जायगी...”

नीलम ने गर्दन नीचे किये बहुत धीमे स्वर में कहा, “गलती हो

गई मां !”

एक भटका-सा लगा । मां बोलते-बोलते रुक गई । दृष्टि उठाकर अभावों में पली उस लड़की को देखा । छाती कुछ उफनी, परन्तु मुंह फेरकर चले जाने के सिवा और कोई चारा नहीं था । सत्येन्द्र सब-कुछ समझता था । खाना खाते-खाते बोला, “क्यों री, क्या-क्या योजना बना डाली ?”

“काहे की ?” अचकचाकर नीलम ने पूछा ।

“अच्छा, वह भी मैं बताऊंगा ? रोटी बनाना छोड़कर तू जो सोच-समझ रही थी वह सब बहुत भारी पड़ा । समझी कलमुंही ! काम सोचा नहीं जाता, किया जाता है ।”

नीलम ने जमीन कुरेदते हुए कहा, “सोचने के बाद ही तो किया जाता है ।”

सत्येन्द्र मुस्करा आया, “अच्छा-अच्छा, समझदार हो गई है । कल दिल्ली चलना है !”

“क्या ?” उसने सहसा दृष्टि उठाई ।

“ट्रेनिंग नहीं लेगी ?”

“पर...”

“पर-वर सब समाप्त हो गए । तुम्हारे गोपाल दादा ने पहले ही किसी जातीय संस्था से कर्जों का प्रबन्ध करा रखा है । जब कमाने लगोगी तब प्रति मास ब्याज-सहित लौटा देना होगा ।”

नीलम गदगद हो आई । मां भी सुखी हुई । वियोग दुःखी करता है, पर नीलम कुछ कर सकेगी, यह सुख भी कम नहीं था । एक दिन वह भी उनके साथ दिल्ली जा सकेगी । सत्येन्द्र से कहा भी, “यहाँ मेरा जी नहीं लगता, बेटा । तुम लोगों के पास सिर छिपाने को ठौर मिल जाय तो गंगा नहा जाऊं ।”

सत्येन्द्र ने मुस्कराकर कहा, “दिल्ली में तो जमना है ।”

“तो क्या हुआ, गंगा की बहन ही तो है” और दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर बोली, “नीलम अकेली कैसे रहेगी ?”

“अकेली क्यों रहेगी ! शशि है, उसे रेडियो में नौकरी मिल गई है ।

सुनील भी एक सरकारी पत्र का सम्पादक बन गया है।”

“जानती हूँ, पर...”

सत्येन्द्र ने दृढ़ता से कहा, “नीलम पैसा अपना ही खर्च करेगी। विश्वास रखो !”

“बेतैयार हैं !”

“हां मां, उन्होंने ही सब-कुछ सुभाया है। मैं भी वहीं रहूंगा। वे लोग बहुत अच्छे हैं।”

“यह भी जानती हूँ। बस कभी-कभी बे-सोचे-समझे बोलने लगते हैं। चांद में भी कलंक होता है।”

कहकर मां हँस आई। सत्येन्द्र ने कहा, “ठीक कहती हो, मां। अभी वहां नीलम के विवाह की चर्चा चल पड़ी थी। सुनील एकदम गोपाल से बोला, ‘तुम किस काम आओगे गोपाल? नीलम से विवाह क्यों नहीं कर लेते?’”

मां सहसा कांप आई, “क्या? ऐसा कहा?”

“हां, मां। वैसे तो यह कोई बुरी बात नहीं, पर मेरे सामने उसे एका-एक ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी। है न?”

मां ने सहसा जवाब नहीं दिया। जैसे तालाब में नहाते-नहाते वह गहरे अतल में पहुंच गई हों और तैरने की कला में अनभिज्ञ होने के कारण हाथ-पांव पटक रही हों। तभी ललिता ने वहां प्रवेश किया। नई साड़ी और चन्द्रहार पहने वह मुस्करा रही थी। आते ही शिकायत के स्वर में बोली, “चाची, तुम यहां बैठी हो, वहां सब तुम्हारी राह देख रहे हैं।”

सत्येन्द्र ने पूछा, “कौन राह देख रहे हैं?”

ललिता ने धीरे से कहा, “आपको भी बुलाया है।”

और फिर चाची की ओर मुड़कर बोली, “जल्दी चलो, नहीं तो शशि जीजी आ पहुंचेगी।”

“शशि आ गई? मैं अभी आती हूँ, बेटा।” नीलम की मां ने पुलक से उठते-उठते कहा, “सत्येन्द्र, चल! उस घर में तेरी मां का अपमान नहीं हो सकता।”

नौ

नरेशकुमार के विवाह में केवल शशि ही शामिल हो सकी। सत्येन्द्र परीक्षा में व्यस्त था और नीलम के लिए ट्रेनिंग के बीच में जाना संभव नहीं था। लौटकर शशि ने उन्हें बताया कि अब मां को यहीं बुला लेना होगा। बेचारी बहुत दुःखी हैं। नीलम ने घबराकर पूछा, “क्यों? कोई नई बात हो गई?”

शशि ने कहा, “तुम्हें कुछ पता नहीं? दुष्ट बलदेवसहाय उन्हें बहुत तंग कर रहा है। पैसा है, सो जो न करे थोड़ा। मैं होती तो बता देती।”

नीलम का मुख लज्जा और अपराध से लाल हो आया। सत्येन्द्र ने अविश्वास से कहा, “लेकिन मां ने तो मुझे कुछ नहीं बताया।”

शशि बोली, “कुछ लोग दुख को आत्म-रति की तरह सहते हैं। तुम्हारी मां उन्हीं में से है। पर घबराने की ऐसी कोई बात नहीं है। अभी तो गोपाल दादा हैं। कुछ दिन बाद वह भी दिल्ली आ जाना चाहते हैं। मालती भी तो यहीं आ रही है। उसके भावी पति भारत सरकार के दफ्तर में काम करते हैं।”

नीलम ने कहा, “अरे हां, अगले महीने की ५ तारीख को ही तो उसकी शादी है।”

सत्येन्द्र तुरन्त बोला, “तो तभी चलेंगे। विवाह के बाद मां को यहीं ले आयेंगे।”

सहसा शशि को कुछ याद आ गया। बोली, “और हां, तुम्हारे मामा की लड़की का विवाह भी तो है।”

मामा का नाम सुनकर भाई-बहन दोनों का मन खराब हो गया। सहसा कुछ कह न सके। शशि ने ही फिर कहा, “मामा कैसे हैं, यह मैं जान चुकी हूं। मां ने कहा है कि नीलम के वहां जाने की जरूरत नहीं है। केवल सत्येन्द्र को जाना होगा।”

सोचने-विचारने के लिए काफी समाचार मिल गए हैं। ५ तारीख भी दूर नहीं है। सत्येन्द्र की परीक्षा उससे पहले ही समाप्त हो जायेगी।

परन्तु नीलम जा सकेगी, इसमें शंका है। ट्रेनिंग के कुछ ही दिन तो शेष रह गए हैं। फिर भी मालती के विवाह में उसे जाना ही होगा, इसलिए बोली, “भैया, मालती की शादी में मैं चार-पांच दिन से अधिक तो ठहर नहीं सकूंगी।”

“पर मुझे तो ठहरना होगा। गांव भी जाना है। इसलिए तुझे अकेले रहना होगा।”

“अकेले क्यों रहूंगी? शशि के रहते एकान्त को जी तड़पा करता है।”

कहकर जोर से हँसी। शशि भी हँसी। बोली, “दुष्ट, मुझे बदनाम करती है! अच्छी बात है, ऐसा मौन साधूंगी...”

वाक्य पूरा कर पाती कि सत्येन्द्र चीख उठा, “यह तो ललिता है।”

अचरज से शशि ने कहा, “अरे, तू कहां कलमुंही?”

नीलम देखती रह गई, “ललिता, तू!”

ललिता बोली, “हूं तो मैं ही, तुझे कुछ शक है?”

नीलम ने कहा, “शक तो है ही। कहां उतरी है?”

“बसन्त भैया के पास। बाज़ार से लौट रही थी कि सुनील भैया मिल गए और घर जाने के लिए ज़िद करने लगे।”

नीलम ने उलहना दिया, “हमें ही ज़िद करनी पड़ी, तू क्यों आने-वाली थी!”

ललिता लजा-सी गई, पर दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर बोली, “जीजी, तुमसे मिले बिना कैसे जा सकती थी? फिर तुम्हें एक समाचार भी देना था।”

नीलम का माथा ठनका। पूछा, “क्या?”

“बात ऐसी ही है। तुम्हारे मामा की लड़की है न, सरला।”

“हां-हां, जानती हूं, उसका विवाह हो रहा है।”

“वह पड़ोस के वकील के बेटे के साथ भाग गई है।”

किसीको भी एकाएक विश्वास नहीं आया। विस्मय से देखते रह गए। कई क्षण बाद शशि बोली, “तो आखिर वह भाग ही गई। मां ने जो कुछ बताया था उसका यही परिणाम हो सकता था। दुःख यही है कि बाप के

कर्मों का फल उस बेचारी को भोगना पड़ेगा ।”

किसीने कुछ जवाब नहीं दिया । कहने की कोई इच्छा ही नहीं हुई । उनके विधुर मामा गांव के रईस हैं । रईसी ठाठ में विश्वास रखते हैं । विधुर और रईसी ठाठ । सरला न देखने-योग्य बहुत-कुछ देखती थी । वह बहुत-कुछ अशोभनीय ही नहीं, तन-मन को कलंकित करनेवाला भी था । यदि पिताजी दुनिया-भर में भटकते तो लड़की जान भी न पाती, पर दिन-भर उसकी नाक के नीचे पीकर रंगीनियां मनाने का चस्का कबतक छिपा रहता ! जमींदारी कल्पवृक्ष तो थी नहीं, जो मुजरों और दावतों का अमर्यादित भार सहनी चली जाती । बातें पर लगाकर उड़नी हैं । फिर वह तो घर में थी । कानों से सुनती, आंखों से देखती, उस पर वर्जनशीलता की दीवार !...वह घुटने लगी, छटपटाने लगी और जब छटपटाहट असह्य हो गई तो मुक्ति की राह ढूढ़ ली ।...

अगले दिन मां का पत्र भी आ पहुंचा । आदेश था, “कैसे भी हो, सरला को ढूढ़ निकालना । वे लोग दिल्ली में ही कहीं हैं ।”

तीसरे दिन गोपाल इसी काम के लिए आया । दिल्ली में दो भगोड़ों को ढूढ़ निकालना क्या सहज है ! लेकिन कभी-कभी इस युग में भी असंभव घटित हो जाता है । दूसरे दिन सुनील किसी मित्र से मिलने एक धर्मशाला में गया था । अचानक देखता है, एक कमरे में एक युवती अकेली बैठी रो रही है । सहसा सरला का ध्यान आ गया । सीधे अन्दर जाकर बोला, “सरला !”

युवती सिहर उठी । दृष्टि उठाकर देखा—सामने एक नितान्त अपरिचित युवक है । घबराकर वह जोर-जोर से रोने लगी । सुनील को अब कुछ भी सन्देह नहीं रहा । बोला, “मेरे साथ चलो । नीलम ने तुम्हें बुलाया है । तुम्हारी बुआ की लड़की है न ?”

“आप, आप कौन हैं ?”

“नीलम और सत्येन्द्र मेरे ही साथ रहते हैं ।”

सरला से जो कुछ पता लग सका, उसका आशय इतना ही है कि कल वकील के लड़के ने उसके पिता को बाज़ार में देख लिया था और आज सवेरे उठकर सरला ने पाया कि रात में किसी समय अपना सामान लेकर

वह चला गया है। तब से उसकी अवस्था भी बहुत अच्छी नहीं है। न खाती है, न पीती है। हर क्षण मरने की धमकी देती है। नीलम उसे देखती है, बस, देखती रहती है। आंखें भर-भर आती हैं। हिचकियां तक बंध जाती हैं। पर शशि उसी सहज स्वाभाविक स्वर में कहती है, “अरे, जो हो चुका, उसके लिए अब रोना क्या ! आगे सोच-समझकर काम करो। भूख-हड़ताल करके मरना पाप का मार्जन नहीं है। उसके लिए और रास्ते हैं।”

और मात्र कहकर ही वह मौन नहीं हो जाती, उसे अपनी छाया में रखती है। अपने साथ रेडियो-स्टेशन ले जाती है। मन उसका भी कई बार दर्द से भर-भर आया है। सोचती है, समाज इसे मंजूर नहीं करेगा। हलकी नज़र से देखेगा और यह अशक्त उस दृष्टि को सह न सकेगी। यह अशक्तता, असमर्थता, मनुष्य के अपमान के साक्षी ये दुर्गुण, आखिर कबतब नारी की विशेषता बने रहेंगे ?...

अगले दिन सरला के पिता से उसने कहा, “आप सरला को मेरे पास छोड़ सकते हैं ?”

उपेक्षा से शशि की ओर देखकर जमींदार पिता बोले, “तुम्हारे पास ? तुम रखोगी ?”

“रखनेवाले तो आप हैं, पर अभी यहीं रहे तो...”

उनकी रक्तवर्ण आंखों में क्रूरता चमक आई। बोले, “सरला मेरे साथ जायगी।”

और उसे जाना पड़ा। फिर सुना, उसके भावी पति ने विवाह करने से इन्कार कर दिया। लेकिन उसके पिता ने पैसे के बल पर एक और लड़के को खरीद लिया। धन, रूप और शरीर, तीनों ही दृष्टि से वह गरीब था। विवाह के मन्त्रोच्चार के समय उस मकान में सन्नाटा था। बाद में वह और भी मुखर हों उठा। सरला चली गई, कभी न लौटने के लिए।

यही सब सुनकर नीलम बोली, “जीजी, विवाह के कारण ही उसे यह सब भोगना पड़ा। नारी क्या विवाह के बिना कुछ नहीं है ?”

“नारी विवाह के बिना भी नारी है। सरला पर जो-कुछ बीती है उसका कारण मात्र विवाह नहीं है, डर भी है। कहूंगी, वही है।”

नीलम ने कुछ जवाब नहीं दिया। उसे लगा, जैसे यही डर उसके भीतर

भी कुंडली मारे बैठा है। शशि फिर बोली, “स्त्री शक्ति और शाप दोनों है। विवाह इन दोनों अतियों के बीच का मार्ग ढूँढ़ने का एक साधन है। युग-युग से इस क्षेत्र में प्रयोग हुए हैं, पर स्त्रीत्व को कोई नहीं मिटा सका, क्योंकि स्त्रीत्व के बिना मातृत्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जबतक स्त्रीत्व है, विवाह है।”

नीलम ने इस बार भी कुछ जवाब नहीं दिया। शशि ने ही फिर कहा, “स्त्रीत्व का सही प्रयोग नारी का अधिकार है और अधिकार का प्रयोग सबसे बड़ा कर्तव्य है।”

नीलम उसी तरह मौन रही। शशि तब तड़पकर बोली, “बोलती क्यों नहीं?”

नीलम ने शशि को देखा। न जाने क्या हुआ कि वह सिसकियों में फूट पड़ी। तब उसकी वाणी से जो अस्फुट टूटे शब्द निकले उनका अर्थ था, “जीजी, सरला मर क्यों नहीं गई, क्यों नहीं मर गई?”

शशि ने तनिक भी भावुक न होते हुए कहा, “क्योंकि वह डरती थी।”

नीलम ने कोई जवाब देने की चेष्टा नहीं की। उसकी आंखों से आंसू गिरते रहे। उन्हें भी उसने नहीं पोंछा। पर दो क्षण बाद शशि फिर बोली, “मुझे ये आंसू अच्छे नहीं लगते, नीलम। यही शक्ति लेकर क्या कुछ करने की चाह रखती है? मंत्र तो मात्र आवरण है। जड़ में तो स्त्री का स्त्रीत्व और पुरुष का पुरुषत्व कसौटी पर है। हमें उसपर नहीं, मंत्रों की शक्ति पर प्रहार करना है, जो पुराने पड़ गए हैं। स्वतन्त्र भारत में इतना भी नहीं कर पाई तो उस स्वतन्त्रता का क्या लाभ?”

नीलम में न जाने कहां से साहस आ गया। बोली, “जीजी, स्वतन्त्रता की नींव में नारी का नारीत्व अभिशाप बनकर पड़ा हुआ है। उसपर क्या बीती, इसका क्या कोई सही-सही लेखा-जोखा रख पाया है?”

शशि ने तीव्रता से जवाब दिया, “नारी का एकमात्र अधिकार है मां बनने का। जबतक हम इस मान्यता को अबला बनकर स्वीकार करती रहेंगी तबतक हम पर वही बीतती रहेगी, जो इन दोनों देशों की सीमा के आर-पार बीती है। किसी भी धर्म में इस अन्याय का प्रतिकार नहीं है। प्रति-

कार अपने अंतर में है । उसका प्रयोग अपनेको जानने में है और अपने को वही जानता है, जिसका मन मुक्त है ।”

शशि इस बार आवेश से कांप आई । नयन-मुख आरक्त हो उठे । वहां रुकी भी नहीं, चली गई । नीलम तब जैसे थी ही नहीं । उसने शशि को कभी इस रूप में नहीं देखा था । किंकर्तव्यविमूढ-सी वह वहीं खड़ी रह गई । बहुत देर बाद सुनील के साथ शशि फिर वहां आई, हँसती-खिल-खिलाती नीलम को देखा तो धक से रह गई । अन्तर्मन कड़वा हो आया पर पास जाकर स्नेहाद्रि कठ से बोली, “तब से यहीं खड़ी है, पगली । खाना नहीं खायगी ? मुझे अभी रेडियो-स्टेशन जाना है, मेरे साथ चल ।”

और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसे पकड़कर ले गई । नीलम शून्यवत् ओस-से भीगी-सी चली गई । सुनील ने तभी पीछे से पुकारकर कहा, “अरे शशि, तुम्हारे यहां एनाउंसर की आवश्यकता होती रहती है । नीलम की आवाज की परीक्षा क्यों नहीं करती ?”

दूर से शशि की आवाज आई, “आज वह भी करूंगी ।”

दस

आधी रात होने को आई, पर बारात के लोग खाने पर नहीं आए । लग्न एक बजे की थी । वर के पिता ने स्पष्ट कह दिया, “जबतक लाला रामनाथ अपना वचन पूरा नहीं करते, तबतक संस्कार नहीं होगा ।”

लाला रामनाथ बोले, “जो कुछ दे सकता था, वह मैंने दिया है । इससे अधिक की शक्ति मुझमें नहीं है ।” फिर आंखों से आंसू भरकर उन्होंने अपनी टोपी वर के पिता के चरणों पर रख दी, हाथ जोड़कर कहा, “मेरे और भी बच्चे हैं !”

वर के पिता तनिक भी नहीं पिघले । लगभग चीखकर उन्होंने कहा, “तुम झूठे हो, विश्वासघाती हो !”

लाला रामनाथ करुण स्वर में बोले, “कुछ भी हूँ, अब तो आपका हूँ ।”

“नहीं, मैं ऐसे लोगों से कोई वास्ता रखने को तैयार नहीं, नहीं दे

सकते थे तो आपको पहले कहना था ।”

“मुझे लड़की की शादी करनी थी, लालाजी !”

“तो अपने-जैसे किसी कंगले को ढूँढ़ा होता । बौने होकर चांद पकड़ने की कोशिश क्यों की ? आपने हमको टटपूजिया समझा है ?”

“जी नहीं, टटपूजिया मैं हूँ । मुझे अब अपने चरणों में शरण दीजिए ।”

टोपी अभी उनके हाथों में थी । उसे एक बार फिर चरणों की ओर बढ़ाया, पर वर के पिता भद्रता और उदारता को तिलांजलि दे चुके थे । उन्होंने तीव्रता से कहा, “मैं लड़के की शादी करने आया हूँ, दया करने नहीं । जन्म भर के लिए लड़के को जिन्दगी बर्बाद नहीं कर सकता । उसे हजार लड़कियां मिल सकती थीं । लोग हजारों रुपए देते थे । मकान तक लिखने को तैयार थे, पर आपको वचन दे चुका था । मैंने आपके साथ यहां तक भलमनसाहत की कि सगाई पर आधा रुपया और आधा सामान...”

बात काटकर रामनाथ ने कहा, “आप ठीक कहते हैं, पर आपको मेरी स्थिति भी तो देखनी चाहिए ।”

“क्यों देखनी चाहिए ?”

कन्यापक्ष के एक बंधु, जो अबतक तिलमिला रहे थे, उबलकर बोले, “जीहां, क्यों देखनी चाहिए ! आपका उससे क्या संबंध ? आपका संबंध है केवल पैसे से !”

इन शब्दों से उस समाज में खलबली मच गई । वर के पिता ने बौखलाकर कहा, “आप क्या कहते हैं ?”

इस ओर से भी किसीने उन बंधु को रोकने की चेष्टा की, पर बल-प्रयोग उनका मुंह बंद न कर सका । वह तीव्रता से बोले, “आप लड़की चाहते हैं या पैसा ? आप विवाह करने आये हैं या लूटने ? आप जानते हैं कि इस समय लड़की के दिल पर क्या बीत रही होगी ? आप जानते हैं कि इस अभागे देश में प्रति-वर्ष कितनी फूल-जैसी बालाएं दहेज की वेदी पर बलि का बकरा बन जाती हैं ?”

इधर कुछ लोग उन्हें पकड़कर बाहर ले चलने को उठे । इधर वर के पिता ने आग्नेय नेत्रों से उन्हें भस्म कर देने की चेष्टा की, पर वे अंगद

के पैर की तरह टस-से-मस नहीं हुए। बोले, “देश स्वतंत्र हो चुका है। संसार बहुत आगे बढ़ गया है। आप किस भ्रम में हैं? वह वह दिन दूर नहीं है जब आपको नारी की अदालत में खड़ा होना पड़ेगा।”

फिर लाला रामनाथ की ओर मुड़कर उन्होंने कहा, “उठो चाचाजी, किसके आगे गिड़गिड़ाते हो! चोर-डाकू भी...”

वर के पिता अग्निक न सह सके, चीख कर बोले, “तुमने मेरा अपमान किया है। मैं अभी जाता हूँ। तुमने समझा क्या है! देखता हूँ, तुम कैसे बेटी का ब्याह करते हो!”

“कैसे क्या? जैसे चाहेंगे।” किसीने कहा।

“आपको भी न्योता है, पधारिए!” पीछे से दूसरे सज्जन उच्च स्वर में बोल उठे।

तब एक कोलाहल मच उठा। एक-दूसरे पर शाब्दिक घात-प्रतिघात के कारण लगन की मंगल-वेला धूमिल हो गई। वर-पक्ष के किसी व्यक्ति ने आकर सूचना दी, “बाहर कुछ लठैत घूम रहे हैं।”

लाला रामनाथ ने वर के पिता के चरण अब भी नहीं छोड़े थे, रुंधे कंठ से उन्होंने कहा, “विवाह की शोभा को यों न नष्ट कीजिए!”

“विवाह नहीं होगा।” वर के पिता बौखलाकर बोले।

इसका जवाब दिया सुनील ने, जो उसी क्षण वहां पहुंचा था। शांत और निडर स्वर में उसने कहा, “विवाह होगा। यह मंगल-वेला नहीं टल सकती।”

उसका स्वर सुनते ही कोलाहल ऐसे दब गया जैसे वर्षा होने पर आंधी दब जाती है। सब मौन होकर उसके मुंह की ओर देखने लगे। सुनील ने हाथ जोड़कर कहा, “पुरोहितजी कहते हैं, मुहूर्त बीत न जाय, इसलिए मैंने मंत्र-पाठ शुरू कर दिया है। आप पधारें!”

चौंकर वर के पिता ने सुनील को ऐसे देखा, जैसे वह कुछ समझ ही नहीं पा रहे थे। बोले, “क्या संस्कार शुरू हो गया?”

“जीहां!”

“किसने शुरू किया?”

“पुरोहितजी ने।”

“पर, पर...” वह शब्दों के लिए छटपटाने लगे, “मेरा मतलब था, प्रभात कहाँ है ?”

“वेदी पर मंत्रों का उच्चारण कर रहा है। पुरोहितजी कहते हैं, प्रभात की भाषा बिल्कुल शुद्ध और उच्चारण मधुर है।”

आश्चर्य-प्रतिहत दोनों पक्षों ने एक साथ सुनील को देखा, पर कोई बोल न सका, वही बोला, “आप सब शीघ्र पधारे तो कृपा होगी।”

वर के पिता ने दबी हुई तीव्रता से कहा, “मैं अभी चलता हूँ। देखता हूँ कि यह विवाह कैसे होता है। कैसे प्रभात...”

और वह तेजी से मंडप की ओर चले। सुनील के संकेत पर बाजे बज उठे। वह स्वयं भगीरथ की भांति बरात-रूपी गंगा के आगे चलने लगा। उसने वर के पिता को कुछ दूर अपनी चाल से चलने दिया, फिर धीरे से पास आकर कहा, “पिता के अपराध का दंड पुत्री को न दीजिए !”

“मैं, मैं...” वह फिर शब्दों के लिए हाथ-पैर मारने लगे।

“मालती ने आपको पत्र लिखा है।”

“मुझे ?” अचरज से उनका चेहरा सहसा लम्बा हो उठा।

“जीहां, यह रहा।”

सुनील ने एक कागज उनकी ओर बढ़ा दिया और बांह पकड़कर सड़क की बत्ती के नीचे ले गया। फिर पत्र भी स्वयं पढ़ दिया :
परम पूजनीय पिताजी,

हिंदू कन्या एक बार रिश्ता बनाती है। मेरे पिता की गलती का जो दंड आप दे रहे हैं वह उन्हें नहीं, मुझे मिलेगा। मेरा यही अपराध है कि मैं कन्या हूँ, पर जैसी अपने पिता की हूँ, वैसी आपकी की भी तो हूँ।

आपकी बेटी—मालती।

वर के पिता ने पत्र सुनकर ‘हूँ’ ऐसा घोर शब्द किया। फिर भंवर से निकले व्यक्ति की भांति उन्होंने सुनील से कहा, “मैं बदला लूंगा। मैं रामनाथ को मजा चखाऊंगा। जन्म-भर उसे बेटी का मुंह न देखने दूंगा। मेरा नाम मुरलीधर है।”

कन्या-पक्ष का घर आ गया था और मंत्र-ध्वनि बाजों के शोर में डूब चुकी थी। जब सुनील ने लाला मुरलीधर के आगमन की घोषणा की तो

पुरोहित स्वस्तिवाचन के मंत्र पढ़ रहे थे। वह चुपचाप अपने स्थान पर जा बैठे। कन्या-पक्ष के लोगों ने हाथ जोड़-जोड़कर उनकी अभ्यर्थना की, “भोजन के लिए चलिए !”

मुरलीधर एकटक पुत्र की ओर देख रहे थे। आते ही जो दृष्टि मिली थी, उसने बहुत-कुछ कह दिया था। कुछ देर तक कोई नहीं बोला। सुनील ने फिर कहा, “भोजन के लिए पधारिए !”

पिता-पुत्र की दृष्टि एक बार फिर मिली। प्रभात ने उधर से नेत्र हटाकर बड़े स्पष्ट स्वर में मंत्र पढ़ने शुरू कर दिए।

अब कुछ शेष नहीं था। वह विवाह-बंधन आज तक के सब विवाहों से दृढ़ और अटूट होनेवाला था। अंतःपुर में हर्ष की लहर दौड़ गई। कुछ देर पहले का प्रबल चीत्कार एक बार फिर मंत्र-ध्वनि में खो गया।

बात यह हुई कि जब वर-पक्ष के पूरा दहेज लेने से पहले भांवरों न पड़ने देने की प्रतिज्ञा का समाचार अंतःपुर में पहुंचा, तब एक कोहराम मच गया। मां पर पहली बार मूर्च्छा का आक्रमण हुआ। ललिता ने घबराकर बुआ, मामी आदि सभीका नाम ले-लेकर पुकारा। जो जहां था और जो कुछ लिये था, उसे वहीं फेंककर भागा। किसीने पानी लिया, किसीने पंखा। किसीने डाक्टर की पुकार की, पर बधू-वेशिनी मालती अपने स्थान से नहीं हिली। जब उसने स्थिति को ठीक-ठीक समझा, तब उसके मुंह से बस एक बार आह निकली। फिर वह तब तक पत्थर की मूर्ति बनी रही जब तक शशि और नीलम ने आकर उसे नहीं पुकारा। उन्हें देखते ही उसका बांध टूट गया। नीलम स्वयं रो पड़ेगी, ऐसी हो रही थी, लेकिन शशि के मुख पर दुश्चिन्ता की छाया तक नहीं थी। मालती को छाती से लगाकर उसने कहा, “आंसू आ रहे हैं। देखू, मगरमच्छ के आंसू हैं या शबनम के।”

और फिर उसका मुंह उठाकर जैसे परखती हो, ऐसे इधर-उधर घुमाकर देखा। कहा, “आंसुओं ने सुन्दरता को बढ़ा दिया है। सबको निकाल डालो, फिर कब काम आयेंगे !”

मालती ने उसी तरह सुबकते हुए कहा, “तुम भी हंसी उड़ाती हो ?”

“और क्या रोज़ ? शरम नहीं आती तुम्हें ? लगी आंसू बहाने। तुम

लोगों के जीने से आखिर लाभ क्या है ?”

नीलम ने सहसा कहा, “जीजी !”

“चुप रह, तेरा दिल भी मोम का है। अरे, जलना ही है तो उसमें एक बत्ती क्यों नहीं जालते ? किसीको प्रकाश मिलेगा।”

“शशि, मैं क्या करूँ ? मैं मर क्यों नहीं जाती !” उसी विह्वल वाणी में कुछ-कुछ अनुताप का अनुभव करते हुए मालती ने कहा। शशि और भी तीव्र होकर बोली, “मरने पर जैसे शांति मिल ही तो जाती है ! मर क्यों नहीं जाती ? मरना आसान है न ! जीना कठिन है। उससे डर लगता है। मैं कहती हूँ, खड़ी हो और आंसू पोंछ ! यह कागज ले और इस पर प्रभात के नाम पत्र लिख !”

मालती ने अविश्वास से दृष्टि उठाई। नीलम हकबकाकर बोली, “पत्र !”

शशि ने कहा, “लिख।...मैं कहती हूँ। मेरा मुंह मत देख। तेरे से अधिक सुन्दर नहीं है, बल्कि कुछ कुरूप ही है। पर देवता क्या रूप को देखते हैं ? वहां तो हृदय का व्यापार चलता है, पगली ! लिख !”

स्वर फूटा, धीमे स्वर में मालती ने कहा, “क्या लिखूँ ?”

शशि मुंह में आंचल ठूस-ठूसकर हँसी, “लो सुनो, तेरा होनेवाला प्रियतम और पत्र बताऊँ मैं ! इतने दिन से क्या पूजा की थाली रीती ही है ? देवता को अर्घ्य के नाम कुछ नहीं चढ़ाया ?”

“शशि, हँसी न कर, मैं मर रही हूँ।”

“पगली, यही तो तुझे लिखना है !”

और फिर पास बैठकर बोली, “अच्छा लिख, मैं ही बोलती हूँ, पर कहीं गलत हो तो टोक दीजो।”

अब नीलम के हँसने की बारी थी। बहुत कोशिश की, पर व्यर्थ। मुंह फेरकर हँसी। पहले तो शशि भी हँसी न रोक सकी, पर फिर जब पत्र बोलने लगी तो गंभीरता ने उसकी वाणी को जकड़ लिया। सन्नाटा-सा छा गया। बाहर का हाहाकार-पूर्ण कोलाहल भी उसे भंग न कर सका। जब पत्र पूर्ण हुआ तो उसने एक प्राध्यापक की-सी वाणी में उसे पढ़ा।

“संसार की दृष्टि में हम दोनों के एक होने में अभी कुछ क्षण शेष हैं । संसार क्षण-भंगुर है । कौन जानता है, वे क्षण आवें या न आवें, पर संसार निषेध की चिंता नहीं करता है, मानता है, वे क्षण आयेंगे । इस मान्यता को आशा कहते हैं । इसलिए, अग्नि की प्रदक्षिणा हो या न हो, मैं तो अपने प्रिय को आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ । यह स्वीकृत हुआ या नहीं, समर्पणकर्ता इसकी चिंता नहीं करता । मैं कन्या हूँ । संसार की दृष्टि में अब मेरे पति तुम बनो या कोई दूसरा बने या मौत का फंदा बने, पर एक बात निश्चित है, मैं आपको भूल न सकूंगी ।

आपकी,
मालती”

पढ़ चुकी तो उसी गंभीरता से बोली, “ठीक लिखा है, लाड़ो !” फिर उसने नीलम से कहा,

“इस पत्र को ले जा । तेरे जीजा वर के पास गये हैं । उनके सामने ही वर को देना !”

“मैं दूँ ?”

“तुम दोगी तो क्या होगा ? माना सुन्दर हो...”

नीलम ने एकदम कहा, “जीजी, तुम तो ...”

“जा-जा, दे आ । देर हो गई तो वधू को स्वयं जाना पड़ेगा ।”

नीलम को जाना पड़ा । जब उसने प्रभात को ढूँढा तब वह सुनील से बातें कर रहा था । साहस करके उसने कहा, “आपका पत्र है ।”

“मेरा ?” वह अविश्वास से बोला ।

“जी ।” नीलम बोली ।

प्रभात के चेहरे पर का आश्चर्य गहरा हो उठा । सुनील ने चकित स्वर में कहा, “किसने लिखा है ?”

पर नीलम अपने कांपते हाथों से प्रभात के कांपते हाथों में पत्र थमा-कर उसका परिणाम देखने को फिर पीछे नहीं मुड़ी । उसका अंग-अंग सिहर रहा था । माथे पर पसीना चमक आया था और वह भाग रही थी ।

उसके बाद शशि और सुनील ने वर और कन्या-पक्ष के योद्धाओं को

कैसे फोड़ा, कैसे समरभूमि में व्यूह-रचना की, यह सब बताने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती ।

प्रभात ने सुनील से कहा, “भाई साहब, मेरा विवाह मालती से होगा और इसी लग्न में होगा ।”

ग्यारह

नरेशकुमार अत्यन्त उद्विग्न हैं । उनके बैरिस्टर पिता ‘मैं ठगा गया’ हरेक से यही वाक्य कहते हैं । वे शायद इस ठगी का प्रत्यक्ष बदला लेने को भी प्रस्तुत हो जाते, परन्तु कानून का ज्ञान मनुष्य को दुर्बल बना देता है । इसलिए मात्र कहकर सन्तोष कर लेते हैं । लेकिन नरेश कानूनवेत्ता नहीं है, रुड़की से परीक्षा पास करके वह ट्रेनिंग ले रहा है । शीला साथ है । उसे सुन्दरी नहीं कह सकते । पर वह एम०ए० पास है । समझती है कि नरेश अफसर है । उसीके अनुसार आचरण करने की चेष्टा करती है । रूज-पाउडर का प्रयोग उसको काफी मोहक बना देता है । परन्तु नरेश है कि क्षण-क्षण में रुष्ट हो रहता है । ऐसा कोई अवसर नहीं चूकता, जिसको लेकर शीला की भर्त्सना न की जा सके । जब भी उसकी दृष्टि शीला पर पड़ती है, मन कड़वा हो आता है । वह उसे परखने लगता है । सांवला रंग बहुधा प्रिय होता है, पर शीला के स्निग्धता-रहित रंग में रस का पूर्ण अभाव है । आंखें कितनी मोटी हैं, नासिका सुन्दर है, पर मस्तक इतना संकीर्ण है कि बालों को यदि एक विशेष प्रकार से न बनाया जाय तो निस्सन्देह उसे कुरूप कहा जा सकता है ।

छि-छि, वह कहां जा फंसा । न रूप, न रूपा । कार भी वधू के समान ही शिथिल और विवर्ण है । बंगले के लिए किस चतुराई से इन्कार कर दिया । ठगी की विद्या में ये लोग कितने निपुण हैं ! सस्ती चीजों की संख्या बढ़ाकर लोगों की आंखों में चकाचौंध पैदा करना चाहते हैं । वस्तुतः शीला के रूप में उन्होंने खोटा सिक्का चलाने का ही प्रयत्न किया है । उसीकी यह रिश्तत है नहीं तो...

पर रिश्वत में भी तो धोखा है। इसकी फरियाद किस जज की अदालत में की जाय ! कौन इस विश्वासघात को समझ सकेगा ! उस नीर-क्षीर-विवेकी हंस को नरेश बहुत ढूँढ़ना चाहता है। पर वह है कि मृग-मरीचिका की तरह दूर-ही-दूर रहता है। यह अन्याय है, बुरा है, इसलिए और भी बुरा है कि उसका कोई प्रतिकार नहीं हो सकता।

यह भूलभुलैया है। इसलिए वह भटकता है और जो थकान और भुंभलाहट पैदा होती है, वह उसके दिल को कड़वा कर देती है। अन्ततः यही कड़वाहट शीला के तन-मन में विष बनकर उतर जाती है। वह खूब जानती है कि उसके पिता ने सामर्थ्य से बढ़कर किया है, परन्तु ठीक विवाह के अवसर पर कार न मिलने के कारण ये लोग क्रुद्ध हो उठे। और जब पिता ने अपनी कार इन्हें दे भी दी, तब भी इनके व्यवहार में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा।

“उनका वादा व्यूक का था, वह उन्होंने पूरा नहीं किया।” काफी वाद-विवाद के बाद नरेश तर्क करता।

शीला करुण कण्ठ से कहती, “सोचो तो, आजकल कितनी मंहगाई है ! जितना अनुमान था उससे दुगना-तिगुना उन्हें देना पड़ा।”

नरेश उतनी ही कठोरता से उत्तर देता, “तो क्या हुआ ! ठेकेदार हैं। लक्ष्मी उनके घर खेलती है।”

पीड़ा से उद्विग्न शीला बोल उठती, “लक्ष्मी जैसे आती है वैसे ही चली भी जाती है। पर आप हैं कि हर बात में उन्हें नीचा दिखाने पर तुले हैं।”

शीला की आंखें गीली हो आतीं। कई क्षण बोल नहीं पाती। उन क्षणों में नरेश जानबूझकर मौन रहता है। पर उसके स्वस्थ होते ही व्यंग्य करता है, “पिता से इतना प्रेम था तो शादी क्यों की ?”

“इसलिए कि लड़कियों की शादी होती है।”

“अब तो युग पलट रहा है। शक्ति उनके हाथ में आ रही है। भाग्य को क्यों नहीं पलट देती ?”

“अगर पुरुष इसी तरह अत्याचार करता रहा तो वह भी हो जायगा।”

नरेश तड़प उठता, “उस दिन की राह देखूंगा। पर जबतक वह

नहीं आ जाता; तबतक तुम्हें पुरुष की अधीनता स्वीकार करनी ही पड़ेगी।”

शीला का स्वर भी अनायास तीखा हो आता। कह देती, “वह तो प्रति-क्षण कर रही हूँ।”

और फिर उसका क्रोध ग्लानि बनकर वह निकलता। दोनों हाथों में मुंह छिपाकर वह भीतर पलंग पर जा पड़ती और नरेश सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश खींचता हुआ दफ्तर में जा बैठता। ऐसे भगड़े प्रायः हो जाते और फिर उस दिन दोनों में से कोई बाहर नहीं निकलता। पर इधर अकस्मात् नरेश में एक परिवर्तन दिखाई दे रहा है। वह प्रायः मौन रहता है। विवाद में नहीं उलझता है। हँसता भी है और शीला को सदा अपने साथ रखता है। शीला भी इस परिवर्तन का पूरा लाभ उठा लेने का प्रयत्न करती है। लगता है, जैसे बीच की खाई पटती जा रही है, जैसे वे एक-दूसरे के पास आ रहे हैं।

यही सब सोच-समझकर उसका कृष्णवर्ण मुख एक निगूढ़ आनन्द से चमकने लगा है। वह बुलबुल की तरह चहकती है। सितार के तारों को अपनी उंगलियों के संगीत पर साध कर कभी-कभी सन्ध्या के भौल-बौले में भङ्गत कर उठती है तो उसका अपना अस्तित्व प्रकृति के अव्यक्त संगीत में लय हो जाता है।

तब वे नहर के किनारे एक निर्जन डाक-बंगले में ठहरे हुए थे। सितार सुनते-सुनते नरेश ने सहसा कहा, “शीला, कोयल क्यों प्यारी लगती है, यह आज समझ पाया हूँ।”

“सच?”

“हां।”

“मेरी सौगन्ध खाओ।”

“तुम्हारी सौगन्ध। तुम्हारे संगीत में शराब का नशा है।”

“तो शराब पीना क्यों नहीं छोड़ देते। कहो, छोड़ दोगे।”

“वह तो एक दिन छोड़नी ही है। गांधीजी आज नहीं हैं, पर उनकी विरासत मौजूद है।”

शीला गम्भीर हो आई। बोली, “महापुरुषों की महानता की नाप-जोख उनकी विरासत ही तो होती है।”

“ठीक है। आओ, धूम आवें।”

“चलो।”

शीला उसी तरह उठ चली। नरेश ने मुस्कराकर कहा, “शीत को संगीत से ज्यादा प्रेम नहीं है।”

मुस्कराकर शीला दूसरे कमरे में चली गई। उस थोड़े-से समय में नरेश ने बहुत-कुछ सोच डाला। कई बार उसका शरीर सिहरा, आंखों का रंग विवर्ण हुआ। निश्चय किया, वह कहीं नहीं जायगा। उसने अपना कोट उतारकर खूटी पर टांग दिया और टाई खोलने लगा। परन्तु अन्त में हुआ यह कि उसने टाई को अच्छी तरह कसा। कोट फिर पहना और छड़ी उठाकर तैयार हो गया। तबतक शीला भी आ गई। देखता है, उसने नीला मखमल का सूट पहना है। उसी रंग के हैं सलवार, सलूका और दुपट्टा जो ओवरकोट के ऊपर निकलकर गर्दन के पृष्ठभाग को ढक रहा है। मुस्करा आया। उत्फुल्ल स्वर में बोला, “तुम पर नीला रंग खूब फबता है।”

“तभी तो पहना है।” कहकर शीला प्यार से मुस्कराई। नरेश भी मुस्कराया। सिहरा और फिर दोनों कोठी से निकलकर नहर के किनारे-किनारे पुल की ओर चलने लगे। एकाएक नरेश ने पूछ लिया, “तुम तैरना जानती हो, शीला?”

“नहीं तो, क्यों?”

“अरे,” अचरज से नरेश ने कहा, “तुमने अबतक क्यों नहीं बताया। यह तो बहुत आवश्यक है। कार से अधिक आवश्यक। ३६ मील लम्बी इंग्लिश चैनल पार करने का रिकार्ड इस बार एक नारी ने तोड़ा है।”

“जानती हूँ।”

“काश कि तुम भी ऐसा कर सको!”

“अविश्वास से शीला जोरों से हँस आई। गालों में गड्ढे पड़ गए। बोली, “आप सिखाइए तो सीखूंगी। पर इस क्रम में जो तपस्या करनी पड़ेगी, उसके लिए क्या आप तैयार होंगे?”

“तुम्हारे लिए मैं हर तपस्या को तैयार हूँ, प्रिय।”

शीला को ये शब्द शरद् की धूप की भांति प्रिय लगे। वह नरेश के

पास खिंच आई। मार्ग निर्जन था। कुछ दूर आत्मविभोर वह जैसे हवा पर तैरती रही। सहसा ओवरसियर के साथ दो ठकेदार कहीं से आ गए। बताया, वे शहर से लौट रहे हैं। कुछ फल आदि ले आए हैं और दो बोतल भी हैं। नरेश ने कहा, “उन्हें संभालकर रखवा दीजिए। अभी तो काफी होंगी। पर हां, कल शहर में चीफ की दावत है।”

“उसकी आप चिन्ता न कीजिए। अबतक यही तो करता रहा हूं।”

कहकर ओवरसियर सरल भाव से हँस पड़े। ठकेदार भी हँसे। उस हँसी की भाषा वे सभी जानते हैं। फिर वे लोग चले गए। नरेश और शीला उसी तरह आगे बढ़ते रहे। शीला का मन डूबते सूर्य की लालिमा में ऊषा की रक्ताभा देख रहा है। पति-प्रेम के लिए कोई भी कष्ट उसको अस्वीकार नहीं है। इसी क्षण वह नहर में कूद सकती है, लेकिन नरेश तैरने की बात फिर कभी के लिए उठा रखते हैं। होनेवाली पार्टी की चर्चा आरम्भ हो जाती है। गहरी आत्मीयता से वह कह उठते हैं, “देखो तो शीला, इन अफसरों को प्रसन्न करने के लिए मुझे क्या-क्या करना पड़ता है। जानता हूं, यह अन्याय है और इसके लिए मुझे अपयश का बोझ ढोना पड़ेगा, पर फिर भी करता हूं।”

शीला सबकुछ समझती है। पिता के घर उसने क्या नहीं देखा! इसलिए कुछ दूर चुपचाप उनके हाथ में हाथ दिये चलती रहती है। पकड़ में कुछ सात्वना का स्पर्श, फिर एकाएक बोल उठती है, “क्या ऐसा किये बिना मुक्ति नहीं है। ठकेदार जो-कुछ तुम्हें देते हैं, वह क्या वे अपने पास से देते हैं?”

“जानता हूं। गरीबों का गला काटते हैं।”

“फिर भी आप लेते हैं!”

“न लूं तो क्या राह का भिखारी बनूं? क्या तुम उसके लिए तैयार हो?”

शीला झिझक आती है। दृष्टि उठाकर पति के मुख की ओर देखती है। अन्तर में लगता है, जैसे लहरें हैं, गर्जन भी है, परन्तु वह आज सब-कुछ सहने को कटिबद्ध है। शान्त दृढ़ स्वर में कह देती है, “मैं तैयार हूं।”

सहसा नरेश ठहाका मारकर हँस पड़ता है और वह ठहाका जैसे शीला

की पसलियों में बज उठता है। पति उसका अविश्वास ही तो कर रहे हैं। वह और भी हठ होती हैं; “मैं जानती हूँ, यह कठिन है। पिता के घर इसी पाप में पलकर बड़ी हुई हूँ, लेकिन इसीलिए यह भी सच है कि मैंने बहुत कुछ सोचा है, पढा भी है।”

नरेश तीव्रता से हाथ हिलाता है। कहता है, “पढने की बात रहने दो, शीला। लिखनेवाले क्या कहना चाहते हैं, इसका स्पष्टीकरण कोई नहीं कर सकता। गांधी के लिखे की पूजा सब करते हैं, मानता कोई नहीं।”

फिर कई क्षण मौन छाया रहता है। दोनों किनारे अस्पष्ट होते जाते हैं। अन्तर का द्वन्द्व धुंधलके में घुमड़-घुमड़ उठता है। सब-कुछ जैसे दूर खिसक जाता है। हवा चलती है, जैसे इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं, ऐसा ही रहा है, ऐसे ही रहेगी। तभी सहसा नरेश बोल उठता है, “हम किस वितण्डावाद में फँस गए। शरत की इस सन्ध्या को क्या इस तरह धूमिल कर देना होगा! आओ, पुल पर बैठेंगे।”

पुल बहुत दूर नहीं है। उसके नीचे गहरी भाल है। फेनिल जल का रोरव नाद दूर-दूर तक सुना जा सकता है। मानो वह यात्री को पुकारता है—ओ राही, मेरा नृत्य-संगीत देखे सुने बिना तुम आगे कैसे जाओगे!

और प्रत्येक राही को रुकना पड़ता है। उस नृत्य-संगीत में मृत्यु का आह्वान है। राही के अन्तर की धड़कन अनायास ही तीव्र हो जाती है, पर इसीलिए उसका आकर्षण गहरा है। कुछ पल वहाँ बिना रुके कोई आगे नहीं बढ़ पाता, क्योंकि फेनिल जल और व्याकुल गति मनुष्य के अपने अन्तर्मन की प्रवृत्तियाँ हैं।

शीला पुल पर बैठ जाती है। उसका दिल फेनिल जल की तरह आन्दोलित हो उठता है। वह नरेश की ओर देखती है। उसके कन्वे पर अपना सिर रख देती है। उसे जैसे अपनी बांहों में बांध लेना चाहती है। वह तब एकटक जल के ऊपर उठते फेन को देख रहा है। उसे आलिंगन करने को आतुर झूबते रवि की रक्तिम किरणों कैसी कांप रही हैं। सहसा शीला का स्पर्श उसके तन में भी कम्पन पैदा करता है। धीरे-धीरे उसका हाथ कन्वे पर से हटाकर अपने हाथ में ले लेता है। पूछता है, “डर लगता है?”

“हां।”

नरेश मुस्कराता है, “तुम तो शक्ति हो !”

शीला न जाने क्यों बड़े वेग से कांपती है, “नरेश !”

“डरो नहीं, उधर देखो, उधर पश्चिम दिशा में...”

शीला की दृष्टि उठती है, जैसे उस रक्तिम आभा पर कोई परछाई आ गई हो। कोई भयंकर पंजा उसकी ओर बढ़ा आ रहा हो। सन्ध्या की मूक छाया-सा यह निर्विकार किधर से आ रहा है, वह कुछ नहीं जान पाती। बस, सिहरती है। भय से आंखें मींच लेती है, जैसे उससे बचना चाहती हो और उसी प्रयत्न में जैसे हलका-सा धक्का उसे लगता है और वह एकाएक लड़खड़ाती है। और...और भील के उस फेनिल जल में जा गिरती है। निमिष-मात्र में ही यह अघटित घट जाता है। उसका शरीर कई बार जल के नृत्य-ताल पर गति करता है, फिर तीव्र धार में अन्तर्हित हो जाता है। कई क्षण स्तब्ध-सा नरेश उसी तरह हाथ फैलाये खड़ा रहता है। फिर एकाएक चीख उठता है, “दौड़ो—दौड़ो, अरे कोई है ? मेम साहब नहर में गिर पड़ीं। दौड़ो...मेम साहब गिर पड़ीं।”

दूर पर कुछ लोग आ-जा रहे थे। पुकार सुनकर दौड़े आते हैं। कुछ ही क्षण में ओवरसियर, ठेकेदार, मजदूर वहां आ पहुंचते हैं। कोलाहल मच उठता है। उनके आने तक नरेश खूब होश में रहता है, फिर गिर पड़ता है और बेहोश हो जाता है।

शीला का शव अगले दिन दूर एक पुल के पास अटका हुआ मिलता है।

बारह

मां मालती के विवाह के बाद ही नीलम के साथ दिल्ली चली गई थी। अब फिर लौटी है। अन्तिम रूप से पति-गृह छोड़ने से पूर्व एक बार वहां जाना आवश्यक था। सत्येन्द्र और नीलम भी साथ आये हैं। नीलम नये टर्म से पढ़ाना आरम्भ करेगी। उसका स्वर माइक पर बहुत

सुन्दर ध्वनि उत्पन्न करता है। शीघ्र ही उसे कोई निश्चित काम मिल जाने की आशा है। अब भी यदा-कदा वह वहां जाकर बोलती है। सत्येन्द्र परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सुनील के साथ आई० ए० एस० की तैयारी कर रहा है, इसीलिए उसे आदेश हुआ है कि वह एक हफ्ते में लौट आये।

सत्येन्द्र ने कहा, “एक दिन कहो दादा, उस गांव में मेरा जी नहीं लगता।”

मां को यह बुरा लगा। बोली, “तू एक दिन भी न रहना। भला रे, मां-बाप का घर है, शेर-बकरे तो वहां रहते नहीं।”

कोई रहता हो, सत्येन्द्र का जी वहां सचमुच ही नहीं लगता। उस सारे वातावरण में, गली-मोहल्ले में, तालाब के किनारे या बाजार के उस पार, नहर के तट पर, स्कूल में और नए कालेज में, वीराने में, जहां शरणार्थियों की बस्ती बस गई है, सब-कहीं उसे अपने बचपन की, सब ओर से तिर-स्कृत स्नेहिल पिता की, गालियों की बौछार और नफरत की निगाहों के नीचे जीने के लिए संघर्ष करती मां की स्मृति उभर-उभर आती है। लगता है कि कहीं बलदेवसहाय से भेंट न हो जाय। वह उसे मार डालेगा। हां, अवश्य मार डालेगा, वह अब भी नीलम को अपनी बनाने के सपने देखता है और समझता है कि सत्येन्द्र ने ही उसके जीवन के इस मधुरतम स्वप्न को भंग किया है।...

इसलिए वह बहुत कम बाहर निकलता है। लेटे-लेटे पढ़ता रहता है। बचपन के साथी मिलने आते हैं तो उन्हें खूब खिलाता-पिलाता है। फिर घंटों बहस करता है। कभी-कभी मालती के घर हो आता है। ललिता प्राइवेट रूप से एफ० ए० की तैयारी कर रही है। इसलिए कुछ देर उसकी मां के सामने बैठकर पढ़ा देना होता है। गोपाल कलकत्ता जाते समय यह काम उसे सौंप गया है।

पर मां के सामने क्यों बैठना पड़ता है ?...

वैसे देखें तो बात कुछ भी नहीं है। सब सहज स्वाभाविक है। पर सत्येन्द्र का विचारक अन्तर में प्रश्न ज्वाला है और स्वयं ही समाधान भी करता है कि जिस ‘आशंकित कुकर्म’ से बचने के लिए यह देख-रेख है वह तो इस वर्जनशीलता के खाद से और भी पनपता है। नीलम शहर जाकर

कैसी मुखरित हो उठी है। यह वर्जनशीलता की प्रतिक्रिया नहीं है क्या ? जो गांव में छुई-मुई थी, शहर का स्पर्श पाते ही वाचाल हो आई। अबसर पाते ही इधर-उधर निकल जाती है। जब-तब जाकर ललिता को हँसा-हँसाकर तंग कर डालती है। शशि की भाभी के पीछे पड़ती है तो रुलाकर छोड़ती है। अचरज कि मां इस परिवर्तन से प्रसन्न है ! मंडली में बैठ कर बड़े गर्व से वह कहती है—“नीलम को रेडियो पर ढाई सौ रुपये महीने की नौकरी मिलनेवाली है।”

कस्बे की औरतें, विस्मित-विमूढ़, कह उठती हैं—“सच !”

“हां-हां, सत्येन्द्र कलकटरी का इम्तहान दे रहा है।”

अभिभूत श्रोताओं को उत्तर के लिए सहसा कोई शब्द नहीं मिलता। लेकिन क्षण-भर बाद जो अबतक अपमान और अकल्याण का कारण थीं, उन्हीं की प्रशंसा के पुल वे बांधने लगती हैं। उनके टूटे घर में, जिसका सदर दरवाजा मां के जीवन की तरह जर्जर हो उठा था, अब फिर रौनक रहने लगी है। हर वह व्यक्ति, जिसकी आंखों में नफरत थी, अब इस घर को आत्मोत्सर्ग का प्रतीक मानता है। बलदेवसहाय से किसीको सहानुभूति नहीं रह गई। जैसे-जैसे जाने की घड़ी समीप जाने लगी है सब आ-आकर विनयसहित वियोग-व्यथा को प्रकट करने और हर प्रकार रुपये-पैसे से सहायता करने का वचन देने लगी हैं। मां उचित शब्दों में सबको धन्यवाद देती हैं और हाथ जोड़कर निवेदन करती हैं कि उनके पीछे वे लोग घर को देखती रहें...

आखिर वह रात आ पहुंची जिसके बीत जाने पर उन तीनों को सदा के लिए उस कस्बे को छोड़ देना है। १२ बजे तक आने-जानेवालों का तांता लगा रहता है। यद्यपि संख्या अब भी अधिक नहीं है, पर आनेवाले सौभाग्य की छाया आती हुई धूप की तरह सदा लम्बी होती है। शशि की भाभी मन-ही-मन भले ही कितनी नाराज हो, पर शशि और सुनील की प्रगति ने उसे अभिभूत कर दिया है। उनके लिए वह बहुत-सा सामान लेकर आई है। मालती से कहने के लिए ललिता की बातों का अन्त ही नहीं आ रहा। इसलिए जब उनके उस भार को संभालकर सोने का समय आता है तब २ बज चुके होते हैं। शरीर में थकान का तीव्र दर्द है, पर हृदय

में आह्लाद और विषाद का इन्द्र-धनुष रचाए मां अभी भी अन्तिम बार घर से विदा लेने को एकाकी कोठड़ी-कोलों से मिलती घूम रही है। प्रिय जन का वियोग नारी जाति को बहुत व्यथा पहुंचाता है। जिनके पास वाणी है, वे मन की बात कहकर जी हल्का कर लेते हैं, लेकिन जो मूक हैं, उनकी दृष्टि की भाषा अंग-अंग को जैसे व्यथा से सराबोर कर देती है। इसीलिए जब नीलम और सत्येन्द्र दोनों गहरी नींद में डूब जाते हैं, मां इस पिछड़े कस्बे के टूटे-फूटे नग्न घर-रूपी गूगे प्राणी से, जिससे उसका कोई वरेन्य और अवरेन्य कर्म नहीं छुपा है, एक बार फिर विदा ले रही है।

यह ममता उसे बुरी तरह जकड़ती है। कितनी मुद्दत बीत गई है, जब पहले-पहल वह इस घर में आई थी। इसके समूचे वातावरण में उसका अस्तित्व इस तरह घुलमिल गया है कि काल-विभाजन की रेखा देखी ही नहीं जा सकती। इसी वातावरण में उसने दो-दो अजनबियों को आत्म-समर्पण किया है। बच्चों की मां बनी है और धीरे-धीरे वह नितान्त पराया घर उसका एकान्त अपना हो गया है। वही मौन-मूक प्राणी शेष-नाग की सहस्र जिह्वाओं से बोलता हुआ आज उसकी मज्जा तक को द्रवित कर रहा है। उसका समस्त अस्तित्व जैसे भीगता जा रहा है। सैलाब आने के स्पष्ट लक्षण हैं, लेकिन इससे पूर्व कि वह चीख मारकर रो उठे, खतरे की घण्टी बज उठती है। उस निपट एकान्त में सहसा किसीके भारी कदमों से चलने का स्वर सहस्र गुना होकर उसे स्तब्ध कर देता है...

फिर पलक मारते ही अनहोनी हो रहती है। भयातुर मां सत्येन्द्र और नीलम के कमरे की ओर लपकती है। आधे मिनट के उस मार्ग में ही एक करुण चीख उसके कानों से आ टकराती है, जैसे जागकर स्तब्ध हतप्रभ सत्येन्द्र किसीको ललकारता है। फिर बन्दूक का शब्द उठता है। बावलों की तरह वह विमूढ गला फाड़-फाड़कर चीखती है, "दौड़-दौड़ो ! अरे लोगो, दौड़ो, डाकू आ गए।"

उसके बाद टार्च का तीव्र प्रकाश और घोर गर्जन के साथ उसके अंग में घुस जानेवाला नुकीला लोह पदार्थ... यह सब अकल्पनीय कैसे घटा, उसे कुछ नहीं पता। गिरते-गिरते उसके कानों में कहीं बहुत दूर से आता हुआ हृदय-वेधक 'मां' ऐसा शब्द अवश्य पड़ता है, उसके बाद उसे होश

नहीं रहना...

जब उसकी चेतना लौटती है तो वह पाती है कि कई परिचित उसके ऊपर भुंक आए हैं। अस्फुट स्वर में बहुत धीरे-धीरे वह कह पाती है— 'नीलम !'

.....

“सत्येन्द्र !”

कोई इशारे से मानो कहता है—“बोलिए नहीं।”

पर वह बोलती है—“नीलम कहां है ?”

“ना-ना, बोलिए नहीं। चिन्ता की कोई बात नहीं है। सब ठीक है।”

अपनी समस्त शक्ति बटोरकर वह अनबूझ-सी कहना चाहती है, “सब कहां हैं ?” कहने से पूर्व अपना हाथ फैलाकर शरीर को टटोलती है, पाती है कि उसकी जांघ बंधी हुई है। यह स्पर्श उसकी स्मृति को झकझोरता है। रत्ती-रत्ती सब याद आ जाता है, सिहर-सिहर उठती है। बार-बार उस स्थान को छूती है और फिर पूरे होश में आकर पूछती है, “नीलम कहां है ?”

.....

“सत्येन्द्र कहां है ?”

“वह घायल है।”

“घायल ?...”

वह तड़प उठती है। उसकी आंखें आतंक और भय से जल रही हैं। थर-थर कांपते हुए व्यग्र-सी अनजान वह फिर पूछती है, “सत्येन्द्र घायल है ! वह घायल कैसे हुआ ?”

उससे कुछ छिपाना न सम्भव था, न उचित। सबकुछ बता दिया कि जब वह घर के भीतरी भाग में थी तब अचानक डाकुओं ने आक्रमण किया। उनके पास बन्दूकें थीं और टाचें भी। उन्होंने किसी भी वस्तु की ओर आंख उठाकर नहीं देखा। सीधे नीलम की खाट के पास पहुंच कर उसके मुंह में कपड़ा ठूस दिया। हतप्रभ-सी वह छटपटाई, चीखी और फिर शान्त हो गई। उसी क्षण न जाने कैसे सत्येन्द्र जाग आया। डाकू उसे बांध न पाए थे कि उसने उन्हें ललकारा। बिना एक भी शब्द बोले एक

डाकू ने गोली चलाकर उसे समाप्त कर देना चाहा, पर उसने जो संघर्ष किया उसके कारण वह गोली उसके कन्घे में लगी और वह गिर पड़ा। इतने समय में मां, जो नीलम की चीख सुनकर भागी आ रही थी, दूसरे डाकू की गोली से घायल हो गई। कस्बे के लोग जिस समय घटना-स्थल पर पहुंचे तो डाकू नीलम को लेकर जा चुके थे।...

सुनकर मां स्तब्ध रह गई। आंसू तब नहीं आये। बस विस्फारित आंखों से द्रव्य की ओर ताकती रही। हाथों की उंगलियों को इस प्रकार हिलाती रही, मानो शून्यता का आभास पा लेना चाहती हो। एक निपट गूंगा प्रश्न उसके अन्तर को कुरेद-कुरेदकर परेशान करने लगा। किनारे के पास आ-आकर जैसे दूर बहुत दूर हो जाते हों। आज तक वह सहती ही चली आई है। सहना ही जैसे उसका भाग्य है। पर इस असीम की सीमा कहां है! असीम है तो सीमा भी है। आखिर यह सीमा है क्या!...

मां से और नहीं सोचा गया तो असमर्थता के इस आत्मबोध से वह रोने लगी। तीन दिन तक रोती ही रही और प्रश्न घुमड़ता ही रहा, घुमड़ता ही रहा। पीड़ा! त्रास! दर्द!... नहीं यह नहीं, कुछ भी नहीं, केवल भाग्य... केवल पलायन...

शुरू-शुरू में सत्येन्द्र की अवस्था कुछ चिन्ताजनक थी, परन्तु शीघ्र ही डाक्टरों उसे खतरे के बाहर घोषित कर दिया। उसकी तीव्र इच्छा-शक्ति देखकर उन्हें भी स्तम्भित रह जाना पड़ा। होश में आते ही उसने पाया कि कुछ दूर पर खड़ी ललिता एकटक उसकी ओर देख रही है और लाला रामनाथ उसपर झुक आये हैं। बहुत देर बाद उन्होंने बताया—मैंने कलकत्ते गोपाल को और दिल्ली सुनील को तार दे दिये हैं। मां ठीक है। जांघ में गोली लगी है। ठीक होने में कुछ दिन लगेंगे। पर चिन्ता की कोई बात नहीं।

सत्येन्द्र ने पूछा, “नीलम कहां है?”

“पुलिस रिपोर्ट लिखकर ले गई है। वह जल्दी आ जायगी।”

सत्येन्द्र को सबकुछ याद आने लगा और जब पुलिस उसका बयान लेने आई तो उसने आक्रान्ताओं के रूप-रंग और वेश-भूषा के बारे में जितना वह जान पाया था, उतना सब राई-रत्ती बता दिया। पुलिस

इन्स्पेक्टर ने पूछा, “आपको किसीपर शक है ?”

“जीहां, है ।”

“किसपर ?”

“बल्देवसहाय पर ।”

संयोग की बात, जिस रात नीलम का अपहरण हुआ, उसी सन्ध्या को शीला की मृत्यु हुई । यह भी सुना गया कि वह अकस्मात् ही नहर में नहीं डूबी । जान-बूझकर नरेश ने उसे गिराया है । एक मजदूर ने पुलिस के सामने इस प्रकार का बयान भी दिया है । इस घटना से कस्बे के लोग नरेश के प्रति घृणा से भर उठे और जब मनुष्य के हृदय में किसी एक के प्रति घृणा जागती है तो सहज ही दूसरे के प्रति सहानुभूति उदय हो आती है । नरेश के प्रति यही घृणा नीलम के प्रति सहानुभूति को सघन कर गई ।

दूसरे दिन सुनील और गोपाल भी आ पहुँचे । पाया कि मां-बेटे दोनों की अवस्था सुधर रही है । ललिता रात-दिन पास रहती है । फिर भी शशि को आने के लिए तार देकर वे तुरन्त नीलम की टोह में निकल पड़े ।

तेरह

नीलम सहसा जाग आई । पाया कि उसका शरीर बंधा है और संभवतः वह एक बैलगाड़ी में पुआल के ऊपर लेटी है । देख नहीं पाती, क्योंकि उसके चारों ओर पर्दा है और उसके बाहर सब-कुछ रात्रि के सघन अन्धकार में छिपा हुआ है । वह अंग हिलाने का प्रयत्न करती है, पर हर प्रयत्न के पूर्व उसकी चीख निकल जाने को होती है । वह चीखना नहीं चाहती । एक तीखा-तीखा दर्द, दर्द में उलझी आतंकित सांसें, वह बेचैन हो उठती है—ओफ, वह क्या करे ! वह कहां ले जाई जा रही है ! वे उसका क्या करेंगे ! क्या उसी तरह जैसे...

वह एकबारगी भिची-भिची सिसकियों में फूट पड़ती है । उसकी यह उम्र, यह रूप, आंखों के आगे वह विस्तृत आकाश जैसे सिमटता

सिमटता मात्र धब्बा बनकर रह गया है। उसे पिछले दिन की बातें याद आने लगी हैं। वह पिटी थी, कैसे निर्दय प्रहार उसके कोमल अंग ने सहे थे। कैसे ? कैसे ? अविश्वास से जैसे वह गूंगी हो गई। बधिर हो गई। आंखों की दृष्टि भी जाती रही। स्पर्श भी जैसे शून्य हो गया। कहीं कुछ नहीं, सबकुछ अस्तित्व-विहीन...

नहीं-नहीं। अस्तित्व है, क्योंकि स्मृति है।...उसने निश्चय किया कि वह उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखेगी। खायेगी नहीं, पीयेगी नहीं, मर जायेगी। लेकिन सत्येन्द्र, मां...उसने बन्दूक का शब्द सुना था। किसी ने 'मां' कहकर भी तो पुकारा था। वह शब्द उसकी अन्तर्द्वियों को बेध गया था। वह जानती है, वह सत्येन्द्र का स्वर था। तो क्या... नहीं-नहीं...यह नहीं हो सकता...यह नहीं हो सकता...वह इस अशुभ की कल्पना भी नहीं कर सकती। नहीं करेगी।

तब उस निर्दय बन्धन में उसका अंग-अंग जैसे पीड़ा से चीखता हुआ हिल उठा। वह फिर शून्य में पहुंच गई। कई क्षण सुषुप्ति-अवस्था में रहने के बाद उसने अपने पास कुछ स्वर सुने, एक फुसफुसाहट, एक दबा हुआ कहकहा, हुक्के की एक तेज गुड़गुड़ाहट, फिर कई क्षण मौन।

भिल्लियों की भंकार से त्रस्त वही असह्य मौन, जैसे उसे कचोटने लगा, कुरदने लगा। तभी सहसा गाड़ी की मन्थर गति रुक गई और एक क्षण बाद नीलम ने सुना, कोई स्पष्ट सुमधुर स्वर में मानों उसीसे कह रहा है—उठो !

नीलम केवल कांपकर रह गई, बोली नहीं। मुंह तक नहीं उठा सकी। पर स्वर तो और भी मधुर हो उठा, “डरो नहीं, यहां मेरा घर है।”

और इसके बाद उसने पाया कि कहनेवाला उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करता, आंखों पर कसकर पट्टी बांध देता है। फिर जैसे वह कोई बहु-मूल्य पदार्थ हो, उसे गोदी में उठाकर नीचे खड़ा कर देता है। कहता है, “चलो।”

आश्चर्य ! नीलम चलती है, लेकिन दूसरा कदम उठाते ही वह लड़खड़ाती है और उसका यह नया साथी उसे संभाल न लेता तो वह गिर

पड़ती । प्यार से वह कहता है, “धीरे-धीरे, मेरा सहारा ले लो !”

“न न”, वह कहता है, “रोओ मत, घर चलो !”

नीलम सहसा रो आती है, “मुझे मेरी मां के पास पहुंचा दो !”

इस अंधेरी रात में (आंखों पर पट्टी जो बंधी है) कहीं कोई स्वर नहीं, इस महाशून्य में अपनी और उस साथी की पगध्वनि ही उसकी छाती पर हथौड़े की तरह पड़ रही है । कुछ देर चलने के बाद वह किवाड़ खुलने का शब्द सुनती है । फिर अपने चारों ओर दीवारों को महसूस करती है । पाती है कि वह एक खाट पर बैठ गई है । तभी कोई उसकी पट्टी खोल देता है । दो क्षण वह आंखें नहीं खोलती । कहीं कोई भय है, जो उसे अस्त करता है । फिर एकाएक चमत्कारपूर्ण ढंग से वह आंखें खोल देती है । पाती है कि वह एक कोठरी में है । खूटी पर टंगी पर लालटेन की बत्ती भूम-भूमकर उसके प्रकाश को कंपा रही है । खाट पर साफ बिस्तर बिछा है और उसका साथी, जो उसे यहां तक ले आया है, एक रौबीला युवक है...

वह फिर आंखें मूंद लेती है । युवक न-मालूम-सा हँसता है, फिर मधुर पर दृढ़ स्वर में बोलता है, “उसने तुम्हारे साथ जो कुछ किया है, वह मुझे मालूम है । वह अब ज़िन्दा नहीं रह सकता ।”

कहकर वह रुकता नहीं है, बाहर चला जाता है और एक क्षण बाद उसी खुले द्वार से एक युवती अन्दर आती है, जैसे वह उसके जाने की राह ही देख रही हो । अचरज से नीलम उसे देखती है—भरा-भरा मुख, गोरा रंग. बड़ी-बड़ी आंखें, सन्तोष और सुख से भरी हुई होठों पर तृप्ति की मुस्कान, बोली, “उठो !”

नीलम नहीं उठी, देखती ही रही ।

युवती बोली, “उठो-उठो । सब इसी तरह करते हैं, पर कुछ बनता नहीं । बनाने के लिए कुछ और करना पड़ता है ।”

नीलम के चेहरे पर प्रश्न उभर आया, “तुम...तुम कौन हो ?”

“मैं कौन हूं ? समझ लो, मैं तुम्हारी देखभाल करनेवाली हूं । याद रखना, भाग न सकोगी । अब उठो !”

नीलम अब भी न उठी, न बोली ।

युवती ने और पास आकर कहा, “जान पड़ता है, मार पड़ी है। औरत बिना पिटे...”

. और अपने मुंह में कपड़ा ठूस वह ऐसी हँसी कि पेट में बल पड़ गए।

क्या वह भी...नीलम आगे सोच न पाई। दिग्भ्रम पथिक की तरह गुम हो रही। युवती उसे बरबस उठा ले गई। नहलाया-धुलाया, कपड़े बदले। चोट देखकर सिसकियां भरीं। उस सारे समय में नीलम ने प्रतिवाद तक नहीं किया, यन्त्रवत् हो रही। सहती रही, सुनती रही। युवती ने कहा, “मैं भी तुम्हारी तरह आई हूँ। आजादी के समय पंजाब में जो मारकाट हुई, उसी की शिकार हूँ। जानती है, कितनी बुलबुलें हमारी आजादी की नींव में दफनाई गई हैं! कुछ लोग बुलबुलों को तितलियां कहते हैं। तू भी एक निहायत खूबसूरत तितली है। तू तो जानती होगी कि जब नया मकान बनाते हैं तब उसकी नींव में कोई बेशकीमत चीज रखते हैं। आजादी के महल की नींव में उसी हिसाब से शहीदों के खून के साथ हमारी अस्मत् भी रखी गई है।”

फिर हँसकर बोली, “फर्क सिर्फ इतना है कि खून आजादी के दुश्मनों ने बहाया था। अस्मत् आजादी के पानेवालों ने लूटी है।”

अब कहीं नीलम का कण्ठ फूटा। सहमी-सहमी-सी बोली, “तुम्हारी अस्मत् भी लूटी गई?”

उसी मुक्त-मन उसने जवाब दिया, “औरत की अस्मत् एक-न-एक दिन लुटती ही है। मेरे साथ कोई खास बात नहीं हुई।”

कई क्षण उसे देखकर नीलम ने फिर पूछा, “तुम चली क्यों नहीं जातीं?”

“कहां?”

“पाकिस्तान। तुम्हारे मां-बाप होंगे।”

“होते तो ढूँढ़ने आते, नहीं आए तो नहीं हैं, और फिर वहीं जाकर मेरे क्या सुरखाब के पर लग जायगे? यहां बच्चे पैदा करूंगी, वहां भी करती। बस जुलेखा से जमना हो गई हूँ, इतना ही फर्क है। यहां अब हकूमत करती हूँ, वहां शायद गुलामी करनी पड़ेगी। तू भी तो अब हकूमत करेगी।”

“मैं ?” नीलम सहसा सिहर उठी ।

“हां । रतिया तुझे पसन्द करके लाया है ।”

“कौन रतिया ?”

“वही जो तेरे साथ था । मुझे सब मालूम है । लाला बलदेवसहाय ने तुझे मंगवाया था, लेकिन वह तो मर गया । रूप की आग में कितने पतंगे मरते हैं ।”

नीलम ने अंतिम वाक्य नहीं सुना । बोली, “मर गया ?”

“हां, कल मर गया । सुना है, हैजा हो गया था । कोई कहता है, कुछ खा लिया था । पर मैं जानती हूं, उसने कुछ नहीं खाया । उसकी हत्या की गई है । इसी गांव में तो रहता था । आज उसके फूल जायेंगे । फूल... हड्डियां जलकर फूल बन जाती हैं...”

वह युवती फिर मुंह में कपड़ा ठूस कर हँसी और नीलम कांप-कांप आई । युवती फिर बोली, “और मेरा खयाल है कि हरिया भी आज-कल का है । रात उसने तुझे मारा था न । आज रतिया उसे मार डालेगा ।”

छुई-मुई नीलम...वाचाल नीलम हत्याओं के किस संसार में आ पहुंची ! न है कहीं कूल, न है कहीं किनारा, जैसे जल में कण्ठ से ऊपर तक डूब गई है, डूबती जा रही है । सह न सक्ती तो रो पड़ी । उसके पैर पकड़ लिये । “मुझे मेरी मां के पास पहुंचा दो, जीजी !”

“जीजी ! मैं तेरी जीजी हूं । न-न,” वह उसी तरह मुंह में आंचल ठूसकर हँसी और बोली, “मुझसे कोई उम्मीद मत रख । मैं देख-भाल के लिए हूं, भगाने के लिए नहीं । अमानत में खयानत नहीं करूंगी, समझी !”

और इतना कहकर रुकी नहीं, तुरन्त वहां से चली गई । नीलम हतभाग्य-सी गून्गवत् हो रही...लेकिन उसी क्षण उसने सुना, बाहर उसी को लेकर कोई जोर-जोर से बातें कर रही है । वह एक क्रुद्ध वृद्धा नारी का स्वर है—“मैं कहती हूं नाशपिट्टे, तू किसको उठा लाया ? फूल-सी लड़की है, तुझे डर नहीं लगता ।”

उत्तर देनेवाला कोई युवक है । पहचानती है कि यह स्वर तो उसने सुना है । वही तो है । कहता है, “लगता था, मां, मुझे डर लगता था कि

यह फूल उस राक्षस के योग्य नहीं है, इसलिए मैंने उसे मार डाला ।”

“ओफ, हत्यारे !”

“मां, मैं हत्यारा नहीं हूँ । मैंने उसकी रक्षा की है । एक की रक्षा करने के लिए दूसरे को मारना ही पड़ता है । मैंने उसे उस पापी से बचाया है, मैं उसे दुःख नहीं दूँगा ।”

“दुःख नहीं देगा । शर्म नहीं आती बोलते हुए ! अरे राक्षस, भगवान् अन्धा नहीं है । औरत को सतानेवाले का नाश होता है । रावण और कंस की कहानी नहीं जानता ? डाकू, हत्यारे, तेरा काला मुँह हो, तुझे नरक में ठौर न मिले !”

“न मिले, मां । मैं उससे शादी करूँगा । फिर चाहे कहीं रहना पड़े ।”

और वह तेजी से हँसा । मां तड़पकर बोली, “भगवान् करे, तेरा नाश हो । तू गल जा । तेरे कोढ़ चूए । तू, तू मेरा बेटा है ! तूने मेरी कोख लजाई है । हाय, तुझसे तो मैं निपूती रहती । एक ने मुसलमानी को घर में डाल रखा है । दूसरा अब किसीकी फूल-सी वच्ची को उठा लाया । अरे, तुम्हें बहुओं की कभी थी क्या ?”

रतिया हँसता ही रहा, “मां, चुपचाप मोड़-जोड़ बांधकर बहू लाने में क्या रखा है ! तू ही कहा करती है—जोरू जोर की नहीं तो किसी और की । मैं अपनी बहू अपनी शक्ति से लाया हूँ ।”

“अरे जा डाकू, लाया है तो लुका-छिपा क्यों फिरे है ! चौड़े में रह । बातें बनाता है, बेईमान ।”

“मां !”

मां ने विह्वल होकर कहा, “मैं हाथ जोड़ूँ, तू इसे छोड़ आ, जा ! इसकी मां की छाती फटती होगी । मैं भी मां हूँ । तेरे पाप जानकर मैं तेरे लिए मरती हूँ । मैं बेटे की मां हूँ । वह तो बेटे की मां है । घायल हिरनी की तरह तड़प रही होगी । जा, मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ, तेरी गाय हूँ । तू इसे लौटा आ । इसके साथ तुमने बुरा किया है । बड़ी बहू कहती थी...”

“मां !” रतिया चीख उठा, “मैंने कुछ नहीं किया । वह हरिया का

काम था । मैं उसका खून करूँगा ।”

“बेटा...”

“हां, मैं तय कर चुका हूँ । हरिया कल सबेरे का सूरज नहीं देख सकेगा ।”

कहकर वह तेज-तेज कदमों से बाहर चला गया । वहां फिर सन्नाटा छा गया । वह सन्नाटा जो रह-रहकर किसीकी बेबस सिसकियों से भंग हो उठता था । नीलम तब क्या सचमुच संसार में थी ! क्या सचमुच यह सब जो उसने सुना था, किसीने कहा था !...

पर वह अधिक देर शून्य में न ठहर सकी । किसीने फिर कोठरी के किवाड़ खोले । पाया कि जीजी है । हाथ में थाली है और उसमें अनेक प्रकार के व्यजन हैं । उसे जमीन पर रखकर उसने कहा, “खाओ ।”

नीलम ने दृष्टि तक नहीं उठाई ।

“मैंने कहा, यहां मनानेवाला कोई नहीं है ।”

नीलम तड़पकर बोली, “मैं नहीं खाऊंगी ।”

“पर मैं खिलाऊंगी ।” जीजी ने मुस्कराकर प्रत्युत्तर दिया । और फिर उसका हाथ खींचती हुई बोली, “खाती है कि नहीं ?”

“नहीं ।” नीलम तिलमिलाई ।

“तो मैं देखती हूँ...” जीजी ने जैसे हाथ उठाने का प्रयत्न करना चाहा ।

“जीजी !” नीलम तड़प उठी, “तुम भी ? तुम तो नारी हो !”

जीजी का हाथ फिसलता चला गया । नीलम देखती तो चेहरा क्षण-भर के लिए राख हो गया था । दूसरे ही क्षण मुंह में कपड़ा ठूसकर वह सदा की तरह हँसी, “इतनी-सी देर में इतना बड़ा रिश्ता बना लिया । पर जानती है कि चोर-डाकू किसीके रिश्तेदार नहीं होते । इस भूल में मत रहना !”

“रिश्तेदार न हों, पर हैं तो आदमी ही । फिर क्या...”

वही विचित्र घुटी-घुटी निश्शब्द हँसी, “पढ़ी-लिखी है, बहस करती है । लीडर बन सकेगी ।”

फिर कुछ क्षण बाद बोली, “अच्छा अब जाती हूँ । खाना यहीं खिड़की

में रक्खा है। कुछ लोगों को अकेले में भूख लगती है। खा लीजो।”

और वह जाने को मुड़ी, पर द्वार पर आकर ठिठक गई, “तुम्हारे हाथ खाली हैं। चूड़ियां पहनोगी?”

“नहीं-नहीं।”

“दो बार ‘नहीं’, यानी ‘हां’। अच्छा ले आऊंगी।” फिर सांस खींचकर बोली, “महंगी हैं, पर क्या किया जाय; नया राज है, शुरू में सबकुछ महंगा-ही-महंगा होता है।”

नीलम ने गरदन उठाकर तीव्रता से प्रतिवाद करना चाहा, “मैं मर जाऊंगी, लेकिन चूड़ियां नहीं पहनूंगी...”

लेकिन कोठरी के किवाड़ बंद हो चुके थे। नीलम सिर पटककर, फफक-फफककर रोने लगी।

चौदह

उस दिन गांव में एक नया फेरीवाला आया था। स्वभाव अत्यन्त नम्र, बोली रस से पगी। शील ऐसा कि आंख भुकाए तो उठाए नहीं। सौदा करने में इतना उदार कि किसीको न लौटाने की जैसा सौगंध खाकर आया हो। देखते-देखते उसका बोझ हलका होने लगा।

लेकिन फिर भी कोई देखता तो वह उदास था। कोई गहरा दर्द उसे कचोट रहा था। किसीकी ओर खुलकर देखता ही नहीं था। उसका सारा ध्यान इसी बात पर केन्द्रित था कि कौन क्या खरीदना है...

इसी समय नीलम की ‘जीजी’ ने वहां प्रवेश किया, बोली, “ओजी, फेरीवाले, तुम्हारे पास नई चूड़ियां हैं?”

फेरीवाले ने उसे देखा, भीड़ तब लगभग हट चुकी थी। पूछा, “तुम अबतक कहां थीं?”

“होती कहां? काम से फुरसत नहीं मिली।”

“क्या चाहिए? अब तो बहुत कम सामान बचा है।”

“चूड़ियां हैं?”

“हैं, देखो।”

फिर जो कुछ बचा था उसे फैलाकर उसने देखा—युवती औरों से कुछ-कुछ भिन्न है। उसने सुन्दर जोड़ा उठाया, पूछा, “कितने का है?”

फेरीवाले ने उस जोड़े को देखकर कहा, “यह तो तुम्हारे हाथ में नहीं आने का।”

“तो मुझे थोड़ा पहनना है!”

“कोई और है?”

“हां, मेरी देवरानी है, नई बहू।”

“अच्छा, अभी आई होगी?”

“कल ही आई है।”

“उसका नाप...?”

“ना बाबा। वह बाहर नहीं निकल सकती। उसका दूल्हा बड़ा जालिम है।”

फेरीवाले ने फिर दृष्टि उठाकर उसे देखा। वह आंचल को मुंह में ठूसती हुई बोली, “अजी, मुझे क्या देखते हो? जल्दी करो। देर हो गई तो उसका दूल्हा मुझे मारेगा।”

“कौन है वह दूल्हा?”

“देना हो तो दो। तुम तो सजरा लिखवाते हो।”

वह हँसा, “बिना सजरा लिखवाये चूड़ियाँ नहीं चढ़तीं।”

“बड़े ढीठ हो।”

“मैं जाता हूँ।” फेरीवाले ने फिर सामान समेटना शुरू किया।

अब तो जीजी गिड़गिड़ाई, “ऐसा न करो फेरीवाले, मुझे चूड़ी देते जाओ। दुल्हन आज ही चली जायगी और चूड़ी के अलावा कुछ दूसरी चीजें भी तो लेनी हैं।”

उसके बाद फेरीवाले ने कोई आपत्ति नहीं की। जीजी ने भी काफी खरीदारी की, बातें भी कीं, फिर एकाएक अपना सामान बटोरकर शीघ्रता से घर की ओर लपकी और सीधे नीलम के पास जाकर बोली, “कहिए, मिजाज दुस्त है?”

उसने वह सब सामान, जो फेरीवाले ने एक बड़े-से सुन्दर कागज में

लपेट दिया था, पीठ के पीछे छिपा रखा था। नीलम ने न दृष्टि उठाई, न कुछ जवाब दिया।

“ओहो, यह नाराजगी बहुतों की देखी है। अभी दूर करे देती हूँ।”

नीलम ने सहसा तड़पकर दृष्टि उठाई। ओह वह दृष्टि! न जाने उसमें क्या था, जीजी कांप उठी। पैकेट हाथ से छूटकर गिर पड़ा। नीलम की आंखें सूजकर वीर-बहूटी बन रही थीं।...

कई क्षण तक कोई नहीं बोला। जीजी के दिल में एक तूफान उठा, फिर शांत हो गया। वह फिर आंचल मुंह में ठूस मरी-सी हँसी हँसकर बोली, “इतना रोने की क्या बात थी?”

नीलम ने करुण स्वर में कहा, “जीजी, मुझे मेरी मां के पास पहुंचा दो!”

“इस तरह रोने से तो तुम मां के पास जाने से रहीं,” जीजी ने धीरे से कहा, “तुम्हारे लिए चूड़ियां ले आई थी। नये डिजाइन की हैं।”

कहते-कहते फिर उसने पहली-सी मस्ती से पैकेट उठाकर नीलम की ओर बढ़ाया। लालटेन पास ही रखी थी, उसे ऊंचा करती हुई बोली, “ले देख!”

नीलम तिलमिलाकर उस पैकेट को फेंकना ही चाहती थी कि उसकी दृष्टि उस कागज पर पड़ी, जिसमें वे चूड़ियां लिपटी थीं। उसपर लाल पेंसिल से लिखा था—गोपाल और सुनील।

उसी क्षण तीनों लोक जैसे हिल उठे। नीलम ने अविश्वास से आंखें फाड़कर जीजी की ओर देखा, वह मुस्करा रही थी।

“जीजी!”

“हां!”

“तुम लाई हो!”

“हां!”

“किससे?”

“किससे, यहां जैसे बाजार लगते हैं।” जीजी आंचल मुंह में ठूसे-ठूसे हँसी, “कभी-कभी फेरीवाले आ जाते हैं। तेरे भाग से आज एक नया जवान फेरीवाला आ गया था।”

नीलम कुछ जवाब दे कि बाहर रतिया की मां जोर से बोली, “तू सच कहता है ?”

“सच मां मुझे तेरी बात ठीक लगी। मैं उसे उसके मामा के घर छोड़ने जा रहा हूं।”

मां गद्गद हो आई, जैसे आशीर्वाद देती हो, बोली, “बड़ा अच्छा, बेटा ! बड़ा अच्छा ! बेचारी भले घर की लड़की है। मेरी छाती फट रही थी। तूने बड़ा अच्छा सोचा मेरे बेटे। जा, उसे छोड़ आ ! उसका आशीर्वाद तेरी जुग-जुग रक्षा करेगा। जा !”

“आज जरूर ले जाऊंगा।”

नीलम को सहसा विश्वास नहीं आया, पर उसके अन्तर मन में प्रभात-किरण-जैसी प्रकाश की एक स्विणिम रेखा चमक आई, परं जीजी आंचल को मुंह में ठूस तेजी से हँसी, “मामा के घर छोड़ने जा रहा हूँ...हा-हा-हा, मामा के घर !”

“जीजी !” नीलम ने कांपकर कहा।

“सच कहती हूँ, इसके जाल में मत आना। यह झूठ बोलता है। यह मां को बहकाने की चाल है।”

“भाभी !” रतिया ने जोर से पुकारा।

“आती हूँ।” भाभी उलटे पांव लौट गई।

दरवाजा फिर बंद हो गया।

अचरज, इस बार नीलम रोई नहीं, अमित विश्वास से भरकर वह बोली, “मैं जाऊंगी।”

और फिर उस पैकेट के कागज को लालटेन के पास ले जाकर ध्यान से देखने लगी, ये अक्षर गोपाल दा के लगते हैं, हाँ, उन्हींके हैं। उन्हीं के...

“गोपाल दा !” उसने उच्छ्वसित होकर कहा, फिर कागज को वक्ष में दबाकर समाधिस्थ हो गई, ब्रह्मानन्द-सरोवर में डूब गई।...

पन्द्रह

मालती का पत्र ललिता के नाम—

प्रिय ललि,

अचरज, नीलम का अबतक पता नहीं लगा । न जाने कहां और कैसी यातना वह भोग रही होगी ! जो लजीली सदा मुस्कराती रही, जिसने आंख उठाकर बात करना नहीं जाना, जो वेदनाओं में पली, अभाव में जिसने सिर उठाया, उसीपर यह वज्रपात ! कितना सुन्दर बोलती थी वह रेडियो पर ! कितनी हृदय से वह नये जीवन की योजना बना रही थी ! उसकी आशा-लता को विधि ने क्यों इस निर्दयता से भुलस डाला ? क्यों उस अभाग्य परिवार पर अभाग्य इस तरह खुलकर बरसा ?

क्या करूं लली ? मैं तो आ भी नहीं सकती । जबतक पिताजी (समुर) न कहेंगे, मैं नहीं आऊंगी । तू ही इनकी सहायता करना । पिताजी से भी कहना । मुझे रोज पत्र डालना । आपरेशन का हाल लिखना । भगवान करें, मेरी नीलम जल्दी लौट आये ।

तेरे जीजा बाहर गये हैं । आते ही भेजूंगी । सबको प्रणाम कहना । मां को कहना कि मेरी याद न करे । मैं जल्दी आऊंगी । सत्येन्द्र और उसकी मां को कोई कष्ट न हो, लली । अच्छा मेरी बहन ! रोज पत्र डालना । नीलम का समाचार मिलते ही तार देना ।

तेरी दीदी
मालती

ललिता का पत्र मालती के नाम—

दीदी !

आपका पत्र पाया । आप तो इतना घबरा गई ! न, दीदी, इधर सब ठीक है । बस मां विह्वल हैं । मां जो ठहरीं ! फिर दुखिया । पीड़ा को पी-पीकर ये दिन देखने-योग्य हुई थीं कि वज्रपात हो गया । अभी नीलम का कोई समाचार नहीं मिला । मिलते ही लिखूंगी । देख-भाल सब ठीक है । जहां शशि जीजी हो, वहां ठीक न होगा तो कहां होगा ! गोपालदा

मुनीलदा को लेकर खोज पर निकल गए हैं। पुलिस सहयोग कर रही है। शीघ्र ही कुछ-न-कुछ समाचार मिलेंगे।

मां वैसे ठीक है, पर करुणा ने उन्हें त्रस्त कर रखा है। कभी-कभी पागलों की-सी बातें करती हैं। मुझे भी क्रोध आ जाता है। पर शशि जीजी है कि मस्ती से हँसती हैं। मां कल कह रही थी, 'हाय ! डाकुओं ने मेरी बच्ची को कितना सताया होगा !' इसपर जीजी बोलीं, 'डाकू स्त्रियों को नहीं सताते, मां।' मां ने ग्राह भरी, 'बेटी, तू नहीं जानती। वह लड़की है। उसका क्या होगा !'

शशि जीजी ने जवाब दिया, 'होगा क्या ? और जो होगा, देखा जायगा। आने तो दो; पहले ही क्यों घुली जाती हो ?' इसपर मां बोली, 'तुम नहीं जानतीं बेटी, तुम जान भी कैसे सकती हो ?' जीजी हँस पड़ी, और कहा, 'नहीं जान सकती तो भाग्यवान हूँ, चाची। ऐसा भाग्य सबका हो।' फिर बोली, 'चाची, जो कुछ हुआ वह बहुत बुरा हुआ, पर अब अपना जी हलका न करके उसे और भी बुरा क्यों बनाती हो ? सत्येन्द्र को देखो न !'

जीजी, सत्येन्द्र सचमुच साहसी है। आपरेशन के समय उसने बेहोशी की दवा लेने से एकदम इन्कार कर दिया। जब डाक्टर ने नुकीले औजारों से चीरकर उसके बदन में से गोली निकाली तो उसने दांत भींचकर दर्द-भरी चीख को अदर ही पी लिया।

कहता था, 'नीलम अवश्य आयेगी और पहले की तरह अपना काम करेगी।' किसीने कहा, 'पाठशालावाले तो अब उसे नहीं रखेंगे।' वह बोला, 'न रखें। इतने बड़े आकाश के नीचे स्थान की कमी नहीं है। नीलम पढ़ायगी नहीं, तो रेडियो पर काम करेगी। वह भी नहीं तो लिखेगी, मजदूरी करेगी, कपड़े सियेगी, पर मरेगी नहीं। वह जियेगी और शान से जियेगी !'

सो जीजी, इधर ठीक-ठीक चल रहा है। बस, नीलम के समाचार जानने को उतावले रहते हैं। मुझे विश्वास है कि कल तक कुछ-न-कुछ खबर जरूर मिलेगी। मां ठीक है। तुम्हारी याद उसे सालती रहती है।

जीजाजी को प्रणाम कहना । आते ही भेजना ।

तुम्हारी प्रिय
ललि

शशि का पत्र मालती के नाम—
मालो !

शुभ समाचार सुन ! नीलम का पता लग गया । परसों तक गांव में थी । कल डाकू उसे जंगल में ले गए । उसका नाम रतिराम है । मामा के घर छोड़ने के बहाने वह उसे गांव से ले उड़ा ।

तेरे जीजा अभी लौटे हैं । वह बता रहे हैं कि गोपालदा बिसाती फेरी वाले के वेश में रतिराम की भाभी से मिले थे और और उससे सब बातें जान लीं । यह भाभी बड़े भाई की मुसलमान बीवी है । बंटवारे के समय जो हत्याकांड मचा था, उसी काल वह आई थी । डाके डालती है, पर नीलम से न जानें क्यों उसे एक लगाव-सा हो गया था । गोपालदा से कहती थी, 'नीलम मुझे इतनी भली लगी, इतनी भली कि मैंने सोचा यह इस जिंदगी को न सह सकेगी।' लेकिन मालो, मुझे तो ऐसा लगता है कि उसे नीलम से ईर्ष्या हुई है । वह डर गई कि कहीं नीलम डाकुओं की रानी न बन जाय ।

शायद यह अनुमान गलत हो, पर इसमें कोई संदेह नहीं है कि वह विचित्र नारी है । रतिराम के ठिकानों का पूरा पता देकर उसने गोपालदा से कहा, 'नीलम को तो तुम ले ही जाओगे; पर एक बात मेरी भी मान लेना । रतिराम को कुछ न कहना । उसकी मां को तकलीफ होगी । वह बहुत भली है ।'

और वह रो पड़ी थी ! मालो, दुनिया कितनी विचित्र है और हम है आखें बंद करके बैल की तरह चलते चले जाते हैं ।

तेरे जीजा तो दिल्ली लौट रहे हैं । मैं भी एक-दो दिन में आ रही हूं । गोपालदा रतिराम के गिरौह में पहुंच गए हैं । कल-परसों तक नीलम आनेवाली है । तू भी आ ! किस आदर्श में फंसी है ? हिम्मत कर ।

शेष सब ठीक-ठाक ।

तेरी मुंहबोली
शशि

मालती का पत्र ललिता के नाम—

ललि,

शशि और सुनील जीजा आ गए। खूब बातें हुई। सौभाग्य से उसी दिन पिताजी (ससुर) भी यहीं थे। मैंने उनसे आने की आज्ञा चाही। पहले तो वह सोचते रहे, फिर बोले, 'मेरी आज्ञा की क्या जरूरत है? तुम अकेली रहती हो।'

मैंने कहा, 'अकेली रहूं या आपके पास, बहू आपके कुल की रहूंगी। और जबतक आप आज्ञा न दे देंगे, मां-बाप के घर में पैर न रखूंगी।'

बहुत देर तक सोचते रहे। कभी मेरी ओर देखते और कभी छत की ओर। कभी मूर्तिवत् स्थिर हो जाते। मैंने कहा, 'अच्छी बात है, मैं नहीं जाऊंगी।' वह एकदम बोले, 'यह मैंने कब कहा?' मैं ठिठकी, 'तो?' उन्होंने कंपित स्वर में कहा, 'चली जाना पर...'

जैसे वह कुछ सोचने को क्षण-भर रुके, फिर बोले, 'मेरा मतलब है कि प्रभात अकेला है, बहुत दिन न लगाना।'

ललि, बस मैं आ रही हूं। पत्र के साथ ही आ रही हूं। ओह ! कितना अच्छा हुआ ! आखिर मैं जीत गई। नहीं, ललि, मैं भूली। यह जीत मेरी नहीं, तेरे जीजा की है। वह बहुत बड़े हैं, बहुत बड़े। मैं तो बस उनकी छाया हूं।

मां से कहना, सबसे कहना। कल वह आयेंगे, रात को मैं चल दूंगी। नीलम भी तबतक आ जायगी। तब शशि को भी, चाहे एक दिन को ही सही, वहीं बुलायेंगे। कितना अच्छा होगा ! कितना अच्छा !

अच्छा। सबको प्रणाम। आधी रात हो गई। पिताजी जोर-जोर से खरटे ले रहे हैं। अब मैं बंद करूं।

तेरी जीजी

मालती

सोलह

उस रात नीलम ने मानो कोई स्वप्न देखा। एक पुरुष-स्वर उससे पूछ रहा है, “तुम्हारा नाम क्या है?”

नीलम इतनी उद्विग्न है कि सहसा जवाब नहीं दे पाती। पुरुष फिर कहता है, “घबराओ नहीं, मैं तुम्हारा हितैषी हूँ। मुझे अपना नाम बता दो।”

नीलम यन्त्रवत् फुसफुसाती है, “नीलम।”

“गोपाल कौन है?”

“गोपाल?”

“हां, तुम उसे जानती हो?”

“वह मेरी सहेली का भाई है।”

“सत्येन्द्र?”

नीलम तड़प उठती है, “वह कहां है? वह मेरा भाई है।”

“घबराओ नहीं, वह ठीक है।”

जैसे अकस्मात् वह स्वर उठा था, वैसे ही शान्त भी हो गया। लेकिन वह स्वप्न तो नहीं था। न-न, नीलम सचमुच गाड़ी में बैठकर तथा-काथित मामा के घर जा रही थी। रात भर चलती रही। दिन निकलने से पूर्व ही वह नितान्त निर्जन में बनी एक गुफा के सामने जाकर रुक गई। जल के अभाव में धरती की छाती में जो दरारें पड़ी हैं, उन्हीं में ये लोग पनाह लेते हैं। उनको विस्तृत करके नीचे ही उन लोगों ने सुरक्षित आवास बना लिये हैं। एक ऐसे ही आवासगृह में नीलम ने प्रकाश देखा। भय से सिहर-सिहर आई।...क्या कोई कभी इधर आ सकता है! क्या वे लोग कल्पना कर सकेंगे कि मैं यहां हूँ! रात वह कौन था! क्या वह साथ आया है!...

उसके बारे में जानने की इच्छा से नीलम उन लोगों की अनेक बातें स्वीकार करने को तैयार हो गई। रतिराम के आने पर उसने मुंह नहीं फेर लिया। देखा, वह मुस्करा रहा है। पर वह ऐसी मुस्कान है, जिसके नीचे शोले उठ रहे हों।...

नीलम के पास बैठकर उसने कहा, “नीलम !”

नीलम ने कुछ उत्तर नहीं दिया। रतिराम ने एक गहरी सांस खींची और फिर सिगरेट जलाकर कई क्षण मौन, उसे पीता रहा। वे क्षण नीलम के लिए कल्प बन गए। एक बार तिलमिलाकर उसने बड़े जोर से गर्दन हिलाई। रतिराम ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। बोला, “नीलम, कबतक नाराज रहोगी ?”

नीलम नहीं बोली।

“सच कहता हूँ, यह काम छोड़ दूंगा। जैसे तुम कहोगी, वैसे ही करूंगा। बस, प्रजा की भलाई के लिए जालिमों से लड़ूंगा। सच कहता हूँ, झूठ नहीं बोलता।”

नीलम ने अब भी कोई जवाब नहीं दिया। तब वह सहसा उत्तेजित हो आया, “तुम शायद विश्वास नहीं करती। मैं हरिया को खत्म कर आया हूँ। देखो...”

इस बार अनचाहे ही नीलम ने गर्दन उठाकर देखा, रतिराम के कपड़े खून से लाल हैं। भय से चीख-सी उठी। तेजी से गर्दन घुमाकर चाहा कि फूट-फूटकर रो उठे कि तभी उसने सुना रतिराम याचना-भरे स्वर में कह रहा है, “मैंने उसे मार डाला। मैं उस हर इन्सान को मार डालूंगा, जो तुम्हारी ओर नजर उठायेगा। एक बार ‘हां’ तो कहो, फिर जैसे कहोगी वैसे ही करूंगा। तुम कहोगी तो मैं अपना दल भी तोड़ दूंगा।”

वह एक-एक शब्द नीलम के कानों में जैसे बिधता चला गया। काश कि वह बहरी होती ! काश कि...पर जैसे ही रतिराम एक बार नीलम के उत्तर के लिए रुका, नीलम ने बड़े जोर से सिर हिलाया। उसके मन में उठा, आगे...आगे...नहीं...नहीं...आगे...बोलो...रतीराम बोलो... नहीं...नहीं...नहीं...आगे रतीराम...आगे...क्या मैं दस्युओं की रानी बनूंगी ? डाके डालूंगी ? काला दुपट्टा, काला चश्मा, पिस्तौल, नकाब... नहीं...नहीं...नहीं...कुछ नहीं...मैं पागल हो गई हूँ...

वह चीख पड़ी और फिर वहीं गिरकर संज्ञाहीन हो गई। रतिराम ने तुरन्त दोनों हाथ मुंह में डालकर सीटी बजाई और फिर नीलम को उठाकर एक पुआल के ऊंचे बिछावन पर लिटा दिया। दूसरे ही क्षण वहां

एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। व्याकुल होकर रतिराम बोला, “पानी, मिट्टी, फिर चाय, तुरन्त !”

काफी परिचर्या के बाद धीरे-धीरे नीलम की चेतना लौटी, लेकिन डरी कबूतरी की तरह उसने एक बार आंखें खोलकर फिर भींच लीं। रतिराम ने मानो फुसफुसाकर कहा, “नीलम, मैं तुम्हें तुम्हारी मां के पास छोड़ आऊंगा। सच कहता हूं नीलम, मैं सच कहता हूं।”

जैसे पास ही कोई मुंह में धोती ठूसकर हँस रहा हो। कह रहा हो, “सच कहती हूं, इसके जाल में मत फँसना, यह झूठ बोलता है। तुम्हें बहकाता है।”

नीलम की चेतना पूरी तरह लौट आई थी, परन्तु एक अज्ञात भय (सचमुच में अज्ञात आशा) उसे स्थिर नहीं होने दे रहा था। उसे उठने की चेष्टा करते देखकर रतिराम स्निग्ध स्वर में बोला, “लेटी रहो, नीलम। अभी चाय आ जाती है। तुम इतनी दुर्बल हो गई हो, तुम खाती क्यों नहीं? तुम्हारे खाये बिना अब मैं भी नहीं खाऊंगा।”

नीलम ने एक बार फिर आंखें खोलकर उसे देखा। उसी क्षण कर्ण-रन्ध्र में प्रवेश करती हुई जीजी की वह दबी-दबी हँसी भी सुनाई दी। वह तिलमिला उठी। वह क्या करे...वह क्या करे...उसे मार्ग नहीं सूझता... वह आता क्यों नहीं! गोपालदा कहां हैं!...

इससे पूर्व कि नीलम फफक-फफक कर रोये, सहसा उस निर्जन में एक विचित्र स्वर गूँज उठा। दूर से आता नफीरी का-सा स्वर। उसे सुनकर रतिराम तड़प उठा। फिर तो निमिष-मात्र में इधर से, उधर से, यहां से, वहां से, बीसियों व्यक्ति बाहर के प्रकोष्ठ में आकर इकट्ठे हो गए। वे सब शस्त्रों से सज्जित थे और क्रूरता के आवरण के नीचे उन सबों के मुखों पर भय की काली डरावनी छाया बुरी तरह नाच रही थी। सबसे पीछे जिस व्यक्ति ने वहां प्रवेश किया, उसने सूचना दी, “पुलिस का एक बड़ा दल बहुत पास आ गया है।”

रतिराम ने पूछा, “कितने आदमी हैं?”

“इस दल में पचास के लगभग हैं। पीछे का पता नहीं।”

क्षण-भर के लिए वहां सन्नाटा गहर उठा। आगन्तुक ने पूछा, “क्या

हुकम है ?”

“चट्टान के उस तरफ उन्हें रोक दो !”

पलक मारते जितने समय में वे सब आसमान के बादल की तरह गायब हो गए। रतिराम अन्दर लौट आया। एक क्षण नीलम की ओर देखकर बोला, “पुलिस आ गई है।”

नीलम सबकुछ सुन चुकी थी। नीचा मुंह किये अन्तर के द्वन्द्व को अन्तर में समेटे मौन बैठी रही। रतिराम ने विश्वस्त स्वर में फिर कहा, “पर वे तुम्हारा पता नहीं पा सकते। यहां आकर भी नहीं पा सकते। मैं निकलने का रास्ता जानता हूं, लेकिन...”

वह ठिठका और नीलम ने कांपकर उसकी ओर देखा। उसके मुंह पर स्निग्धता छाती आ रही है और नयनों के कोर कुछ मुंद-से गए हैं। उसने अपना वाक्य पूरा किया, “लेकिन नीलम, क्या तुम मेरे साथ चलोगी...”

नीलम के मन में आशा की जो वेगवती धारा उमड़ चली है, उसे क्या रतिराम रोक सकेगा? पर शंकाओं का प्रबल आघात उसे आलोड़ित किये दे रहा है। समुद्र-मंथन के जल की तरह उसका समूचा अस्तित्व जैसे फेनिल हो उठा हो। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। दे ही नहीं सकी। रतिराम ने फिर कहा, “नीलम, मेरा जीवन तुम्हारे हाथ में है। जिधर चाहो, मोड़ दो।”

नीलम नहीं बोली।

“तुम मेरे साथ नहीं चलोगी ?”

नीलम अब भी नहीं बोली।

“तुम अपने घर जाना चाहती हो ?”

नीलम ने इस बार आंखें उठाईं। वे गदराये बादल की तरह उफन रही थीं। रतिराम ने उन्हें देखा, फिर सहमकर दृष्टि झुका ली। दूसरे क्षण एक गहरा निःश्वास उसके मुख से निकल गया। धीरे से बोला, “समझ गया।”

और ठीक उसी समय पुलिस कप्तान के साथ पुलिस के सिपाहियों ने प्रवेश किया। रतिराम ने उस ओर देखा। सहज भाव से उसका हाथ

पिस्तौल पर गया । उसने पेंतरा बदला । पुलिस कप्तान ने भी हाथ ऊपर किया, लेकिन रतिराम ने उसी क्षण हाथ नीचे कर लिया । पलक मारते ही सबकुछ हो गया । नीलम दौड़कर उस ओर आगई और व्यग्र स्वर में बोल उठी, “नहीं—नहीं, गोली न चलाइये !”

रतिराम ने मुस्कराकर कहा, “हां, गोली चलाने की कोई जरूरत नहीं है ।”

उसने पिस्तौल फेंक दी । आश्चर्य से पुलिस कप्तान ने देखा कि पीछे के अन्धकार में से कई अंगरक्षक डाकू भी प्रकाश में आ गए हैं और उन्होंने बन्दूकें रख दी हैं ।

पल के सहस्रवें भाग में कप्तान सिंहरे । हतप्रभ-से एक क्षण उन सब को देखते रहे । फिर हठ स्वर में कहा, “सबको ले चलो !”

सत्रह

प्रभात तांगा लेने बाजार चले गए । तभी सहसा द्वार पर आहट हुई । मालती शीघ्रता से मुड़ी । सुना, किसीने उसका नाम लेकर पुकारा । दूसरे क्षण विद्युत्-सी वह द्वार पर पहुंच गई । कहा, “गोपालदा, आप !”

गोपाल ने कोमल स्वर में कहा, “नीलम आई है, मालो ।”

मालती ने अविश्वास से आंखें फाड़-फाड़कर उस धुधले अन्धकार में देखा । पुकारा, “नीलम, नीलम !”

यह तो कुछ गिरनेवाला है । दौड़कर उसने उसे बांहों में सम्हाल लिया, उसके बाद पता नहीं, कैसे अन्दर आई, कैसे सबकुछ हुआ । बहुत देर तक वह उसे छाती से चिपकाए छत की ओर ताकती रही और उसके दिल की धड़कन सुनती रही । जैसे वे दोनों किसी महाशून्य के अतल में डूब गई हों । नीलम को अपने अस्तित्व का आभास-मात्र भी नहीं था । जैसे उसका प्रेत हो । उलझे-रूखे केश, सूजे रक्तवर्ण नयन, उभरे नीलों से भरा उसका कोमल शरीर । मालती और न सह पाई, रो पड़ी, पर नीलम के आंसू तक चुक गए थे । वह भीत-विक्षिप्त-सी उसके अंक में

चिपटी ही रही। जैसे अबोध शिशु खोई मां को पाकर स्तब्ध रह जाता है। युगों बाद उसकी चेतना लौटी। तब मालती के मुंह की ओर देखकर फफक-फफक उठी। दीर्घ निःश्वास खींचकर मालती बोली, “अब ठीक है, नीलम ! रो ले, जी हल्का हो जायगा।”

द्वार पर फिर आहट हुई। प्रभात अन्दर आता हुआ बोला, “मालो, कहां हो तुम ? देर हो गई। जल्दी करो। मैं तांगा ले आया हूं।”

मालती ने वहीं से कहा, “तांगा लौटा दो !”

प्रभात ने अचकचाकर पूछा, “क्यों ? क्या हुआ ?”

“वे लोग यहीं आ गए हैं।”

“कौन ? सत्येन्द्र आ गया है ? कहां है ?”

प्रभात अन्दर आ चुका था। मालती ने कहा, “सत्येन्द्र नहीं, गोपाल-दा नीलम को लेकर आये हैं।”

क्षण-भर प्रभात अवाक् खड़ा रहा, फिर मालती के पीछे-पीछे वहीं पहुंच गया, जहां नीलम अपने आंसू पोंछ रही थी।

नीलम धीरे-धीरे अपने-आपको पाने का प्रयत्न कर रही है। रोती नहीं, सोचने की प्रवृत्ति से भी संघर्ष करती है। हर क्षण कुछ-न-कुछ करने का उसका आग्रह रहता है, परन्तु निराशा की जकड़ है कि ढीली नहीं पड़ती। क्षण आते हैं जब उसे लगता है कि वह विगत से मुक्त हो गई है, लेकिन दूसरे ही क्षण न जाने किस द्वार से आकर रतिराम उसके सामने आ खड़ा होता है, “जो कहोगी वही करूंगा। इस काम को छोड़ दूंगा...”

और वह भाभी धोती मुंह में ठूसकर हँसने लगती है, “तू डाकुओं की रानी बनेगी !”

और वह रतिराम की मां का कंकाल, आंसुओं से बिंधा उसका वह करुण-कठोर स्वर, “नाशपीटे, तेरा नाश होगा। तू औरत को सताता है।”

और अस्पताल में पड़ी उसकी मां...सत्येन्द्र और वे असंख्य दृष्टियां। वे सब अनायास ही न जाने किस मार्ग से होकर उसके हृदय में प्रवेश कर जाते हैं और फिर वह स्वयं अपने हाथ से जाती रहती है। परन्तु जब वह बहुत द्रवित हो उठती है तब जैसे कोई धीरे-धीरे उसके पास

आता जान पड़ता है। वह न तो बोलता है, न हँसता है, परन्तु उसकी पगध्वनि जैसे उसकी छाती के उच्छ्वास को शान्त करती जान पड़ती है। नेत्र मूदकर वह उस मूर्ति को देखने के लिए व्यग्र हो आती है और जब वह मूर्ति स्पष्ट होती है तो वह विस्मित होकर पाती है, यह तो गोपालदा हैं।

वह घबराकर आंखें खोल देती है और चकित-विस्मित हरिणी की तरह ग्रीवा घुमा-घुमाकर चारों ओर दृष्टि डालती है। एकाएक उसके कानों में एक स्वर गूँजता है, “याद रख नीलम, तुझे जीना है! संसार से झूझकर जीना है। जबतक शरीर में चैतन्य है तबतक तुझे जीवन का सम्मान करना है। भीख मांगकर, दर-दर की खाक छानकर, यही अनुभव करना है कि यह भीख मानवता की भीख है, यह खाक मातृभूमि की खाक है...”

यह उपदेश उसे अच्छा नहीं लगता, लेकिन फिर भी कुछ क्षण के लिए उसकी क्रियाशक्ति को धूमिल करनेवाला विचारों का कुहासा छिन्न-भिन्न हो जाता है। वह उत्साह और उमंग से भर उठती है।

इसी लाक्षणिक उत्साह में एक दिन उसने सत्येन्द्र को लिखा, भैया,

तुम्हारे पत्र मेरे जीवन का सम्बल बन गए हैं। विश्वास दिलाती हूँ कि जान-बूझकर जीवन का अपमान नहीं करूंगी। परन्तु डरती हूँ। कभी-कभी अपनेको ही भूल जाती हूँ।

माँ और तुमसे मिलने को तड़प रही हूँ। परन्तु एक क्रंद से निकलकर दूसरी में आ पड़ी हूँ। जबतक यह युद्ध-पर्व समाप्त नहीं हो जाता, तबतक मैं कहीं नहीं जा सकती। सुनती हूँ, गोपालदा आप दोनों को यहां लाने का प्रयत्न कर रहे हैं। नहीं जानती, इन लोगों का बदला कैसे चुकाया जा सकेगा! परन्तु बदले की बात करना क्या उनका अपमान करना नहीं है!

उन सात दिनों में क्या देखा, क्या समझा, कैसे बताऊँ और बताऊँ ही क्यों? कंजूस के धन की तरह जीते-जी वह मेरे अन्तर में छिपा रहे तो क्या कुछ डर है! यह दुर्भाग्य इसी तरह मेरा सौभाग्य बन सकेगा। जो

शाप बनकर आया, उसको इसी तरह मैं आशीर्वाद के रूप में स्वीकार कर सकूंगी ।

सदा अपने में सिमटी रही हूँ । जिस क्षण मुक्त होने का अवसर आया, उसी क्षण यह वज्र आ गिरा । इस वज्र को कुसुम न बना सकी तो जीना कैसे जानूंगी ! आप सदा यही तो कहते आये हैं...

पर भैया, ये सुनी-सुनाई और पढ़ी-पढ़ाई बातें लिखकर मैं सत्य को झुठलाना नहीं चाहती । उपदेश प्रायः दुर्बलता का ही व्यापारिक रूप है । जो मुझपर बीती है, उसे न तो मैं पी सकी हूँ, न सह सकी हूँ । जिस दिन वह साहस पा सकूंगी, उसी दिन यह कह सकूंगी कि मैंने जीने की राह ढूँढ़ ली है ।

मां को प्रणाम कहना और ललिता को बहुत-बहुत प्यार !

तुम्हारी लाड़ली
नीलम

नीलम पत्रों में जितनी मुक्त है, व्यवहार में उसका शतांश भी नहीं । जब उसकी मां और सत्येन्द्र दोनों दिल्ली आगए, तब भी वह उभरती हुई दार्शनिकता पर जय न पा सकी । मां उसे देखकर अतिशय विह्वल-विकल हो उठी थी, पर सत्येन्द्र पूर्ण शान्त बना रहा । उसका सिर छाती पर रखकर सहलाता रहा । इतना ही बोला, “ठीक है ?”

“भैया, तुम्हें...”

“पगली ! मैं बिल्कुल ठीक हूँ । ना-ना, आंसू नहीं चाहिए । उन्हें मां के लिए बचा रख !”

और वह जोर से हँस पड़ा । कहीं दर्द होता है, तभी जोर से हँसी आती है । नीलम ने सजल-नयन भैया की ओर देखा । फिर मुस्करा पड़ी । बोली, “मां तो बहुत रो चुकी है ।”

“मां के रोने का अन्त नहीं है, नीलम । चोट खाकर अग्नि पैदा होती है या जल । मां के भाग्य में जल आया है ।”

“पर जल में भी तो बड़ी शक्ति होती है ।”

“होती है, पर मां उस शक्ति का उपयोग करने के लिए बूढ़ी हो चुकी । तुम चाहो तो कर सकती हो ।”

नीलम ने कोई जवाब नहीं दिया और न सत्येन्द्र ही उस साहस को कायम रख सका, जिसकी उसका उपदेशक मन बार-बार घोषणा करता रहा है। नीलम के पास से हटते ही वह स्वयं रो पड़ा। यदि वह जंगल से दूटकर आई नीलम को देख लेता तो न जाने क्या कर बैठता। अब तो उसकी सब चोटें प्रायः मिट चुकी हैं। मुख पर का अन्धकार भी कम हो गया है। केवल नयनों में निराशा अभी भी है। अदालत से लौटती है तो जैसे सबकुछ लुटा आती है। वह जानती है, रतिराम ने हरिया की हत्या की है। यह भी जानती है कि बलदेवसहाय की हत्या का षड्यन्त्र भी इन्हीं लोगों ने रचा था। फिर भी जब-जब रतिराम को उसने अदालत में देखा है उसके नयन भुक गए हैं। कानों में उसका वह स्वर गूज-गूज उठा है, “मैं सबकुछ छोड़ दूंगा...!”

वह कांप आती है। सोचती है, क्या वह छोड़ देता ! क्या वह मेरे लिए डाके डालना बन्द कर देना ! नहीं-नहीं, वह मेरा कौन है ! वह डाकू, वह हत्यारा ..

तब जैसे कोई चुपके-से ही बोल उठता, “तुम्हारे ही कारण वह हत्यारा बना। तुम्हारे ही लिए उसने हरिया की हत्या की।”

“नहीं नहीं।”

“नहीं क्या ! यह सत्य है, एकान्त सत्य है।”

“नही—नहीं, वह डाकू है। उसने मेरा अपहरण किया है। वह मेरे रूप पर रीभा है।”

“वीर पुरुष रूप की उपासना करते हैं। शक्ति के बल पर ही भोगते हैं।”

“यह गलत है। नारी सम्पत्ति नहीं है।”

“वह क्या है, कोई नहीं जान सका; पर यह सत्य है कि नारी सिंहनी की भांति सदा शक्तिशाली पुरुष का वरण करती है और रतिराम शक्तिशाली है।”

नीलम भयंकर वेग से कांप उठी। हतप्रभ-विमूढ़ देर तक कांपती रही, कांपती रही।

उस दिन उसे रतिराम की मां को पहचानने के लिए कहा गया।

देखती है—सामने एक हड्डियों का पिंजर है। आंखों में भरी है वेदना और व्यथा। मुख पर उभर आई है युग-युग की पीड़ा। उलझे बाल, फटे वस्त्र, आंखों में कीच-भरे वह दुर्भाग्य-मूर्ति दीवार के सहारे खड़ी है।

हृत्भाग्य-सी देखती ही रह गई। जैसे किसीने अन्तर को कचोट दिया हो, यह मां है, यह मां है !

अधिकारी ने पूछा, “इसे पहचानती हो ?”

वह कांप आई, पर दृढ़ता से उसने कहा, “नहीं।”

“कभी कहीं देखा है ?”

“नहीं तो, नहीं देखा ”

“पर तुमने कहा है कि रतिराम की मां, रतिराम को बहुत बुरा-भला कहती थी।”

“जीहां। वह मैंने सुना है, पर मैं यह नहीं जानती, वह कौन थी। मैंने उसे देखा नहीं।”

“ठीक है, परन्तु इसे तो पहचानती हो ?” अधिकारी ने एक दूसरी नारी की ओर इशारा किया, जो उसी क्षण अन्दर आई थी। देखते ही नीलम जैसे सिहर उठी, कण्ठ रुंध गया। फुसफुसाई, “जीजी !”

वह जीजी ही तो है। वही रूप, वही रंग, जैसे अभी आंचल मुंह में ठूस हँस पड़ेगी। नहीं...नहीं...नीलम कांपी, वह जीजी नहीं है, एकदम नहीं है। वह तो कोई भिखारिन है—पीला निस्तेज मुख, निरन्तर रोते रहने से लाल हुए नयन, कांपता शरीर, वस्त्रों की जैसे कोई सुध ही नहीं है।...

“इसे पहचानती हो ?”

नीलम ने आंखें फाड़कर देखा, “नहीं, इन्हें तो मैंने कभी नहीं देखा।”

“पर तुमने तो कहा है कि वहां एक स्त्री थी, जो तुमसे बड़ी सहानुभूति रखती थी ?”

“हां-हां।” नीलम तड़पकर बोली—“वह रतिराम की भाभी थी। सदा हँसती रहती थी, सुन्दर थी। यह तो...”

अधिकारियों ने एक-दूसरे को देखा। कई क्षण विमूढ़-से बैठे रहे। फिर नीलम लौट आई। उस दिन वह कितना रोई। कई दिन तक

रतिराम की मां का वह कंकाल और जीजी का वह विकृत स्वरूप उसके नयनों में भरा रहा, उसके साहस को चुनौती देता रहा। इनका क्या होगा, बारबार यह प्रश्न उठता रहा, घुमड़ता रहा। लेकिन समाधान का तो कहीं आभास तक नहीं है। परेशान होकर आखिर एक दिन उसने सत्येन्द्र से पूछा, “क्या रतिराम बच नहीं सकता ?”

सत्येन्द्र ने सशंक नीलम की ओर देखा, “क्या बात है नीलम ?”

नीलम कांप आई, “कुछ नहीं...कुछ भी तो नहीं। उसकी मां बहुत अच्छी है।”

सत्येन्द्र ने फिर अपनी बहन की ओर देखा। कहा, “न्याय का विधान करणा की चिन्ता नहीं करता।”

सहसा नीलम का तार्किक मन जाग आया, “भविष्य की तो करता है ?”

“न, वह केवल वर्तमान को देखता है। वह भी साक्षी के आधार पर। वह पंगु है नीलम, निरा पंगु।”

नीलम मौन हो रही, लेकिन भीतर मन्थन उतना ही तीव्र हो आया। बबराकर फिर पूछा, “उसकी भाभी का क्या होगा ?”

“पाकिस्तान भेज दिया जायगा।”

“क्यों ?”

“क्योंकि वह मुसलमान है।”

“और उसकी शादी जो हुई है !”

“वह पाकिस्तान बनने के बाद हुई है, इसलिए नाजायज है।”

याद आ जाता है, उस प्रेम-विभोर जीजी ने कहा था, “स्वतन्त्रता की नींव में शहीदों के खून के साथ नारी की अस्मत् भी भरी गई है।”

नीलम फुसफुसाई, “और उसका प्रेम भी...”

“तब...”

अन्तर इतना भीग आया है कि वह पागल-सी हो गई है, किसीसे कुछ कह नहीं सकती। कहना चाहती ही नहीं। मन उसका रह-रहकर जीजी के पास उड़ जाना चाहता है। कितनी स्वतन्त्र, कितनी शक्तिपूर्ण, कितनी ममतामय और कितना उसे सहना पड़ा, कोई अन्त नहीं है। उसे पाकिस्तान जाना होगा ! शायद मर जायगी...शायद सबकुछ भूलकर

किसीसे विवाह कर लेगी...!

नहीं-नहीं, वह मर जायगी। विवाह नहीं करेगी।

उसके अपने अन्तर में ही कोई कह उठता है, “वह नारी है, मरेगी नहीं, विवाह कर लेगी। विवाह के बिना नारी नारी नहीं है।”

“क्या, क्या,” नीलम बौखलाती है।

अन्तरवासी हँस आता है, “विवाह से डरती हो? न सही विवाह, नारी को पुरुष चाहिए। पुरुष बिना नारी अपूर्ण है। पति, प्रेमी, व्यभिचारी, साथी तथा मित्र, ये सभी पुरुष हैं।”

नीलम एकाएक चीख उठती है, “बन्द करो यह शब्द-जाल! मैं पुरुष को नहीं चाहती। मैं उसकी हत्या करूंगी...”

अन्तरवासी मौन नहीं होता। बहुत धीमे-धीमे फिर कहता है, “पुरुष की हत्या का अर्थ है आत्महत्या।”

नीलम तड़प उठती है। यह मौन मन्थन उसके तन-मन को जर्जर कर देता है। उसके भीतर जैसे बर्फ जम जाती है...

एक दिन इसी मन्थन के समय शशि ने उसे पुकारा। वह नहीं बोली। दूसरी बार, तीसरी बार, वह फिर भी नहीं बोली। तब शशि पास आ गई। मालती भी साथ थी। बोली, “दिन में स्वप्न नहीं देखा करते, रानीजी!”

अपराधिनी-सी नीलम कांप-कांप आई, “ओह जीजी! क्या बात है?”

“वही तो हम पूछते हैं, स्वप्न में कौन आ रहा है रानीजी?”

नीलम मुस्करा आई। लजाकर बोली, “कोई नहीं, कोई भी तो नहीं।”

दोनों जोर से हँस पड़ीं। शशि बोली, “यह कोई नहीं बड़ा भयंकर दैत्य है। इसके जाल में मत फसना। तो, हम तुम्हारे लिए ‘कुछ’ लाये हैं।” मालती आगे बढ़कर, “वह ‘कुछ’ रानीजी की सेवा में पेश कर दो।”

चकित-सी नीलम ने देखा, मालती के हाथ में एक लिफाफा है। बड़े अदब से उसे उसने उसके फँले हुए हाथों में रख दिया और कहा, “खोलकर पढ़ो तो। जो स्वप्न में आया है, उसीने भेजा है।”

नीलम का विस्मय ज्वार पर था। कांपते हाथों से उस पत्र को खोला।

पाया, वह नियुक्ति-पत्र है। हैप्पी स्कूल में जूनियर कक्षाओं को पढ़ाने के लिए उसे नियुक्त किया गया है।

अनायास ही वह कांप आई। उस एक क्षण में उसका अन्तर जैसे उद्वेलित हो उठा, जैसे उसने स्वर पाया, जैसे फिर कोई जोर से हँसा। तेजी से गरदन हिलाकर उसने देखा, शशि और मालती दोनों फिर जोर से हँस पड़ी हैं। कह रही हैं, “फिर स्वप्न-लोक में पहुँच गई! अब स्वप्न देखकर रानीजी, धरती पर लौट आइये। कल से स्कूल जाना है।”

और वे खट-खट करती हुई वहाँ से चली गई। दूसरे ही क्षण उसने सुना, गोपालदा कह रहे हैं, “नाटक करने में तुम बड़ी चतुर हो गई हो। बेचारी कैसी डर गई है!”

नीलम का मुख यह सुनते ही एक दिव्य ज्योति से भासमान हो उठा। उसका स्वप्न वास्तव में सत्य हो गया था।

अठारह

शीला की मृत्यु का समाचार पाकर कृष्णगोपाल स्तब्ध रह गए। वह मातृहीना कन्या उन्हें प्राणाधिक प्रिय थी। वह मात्र पुत्री ही नहीं थी, स्वर्गीया पत्नी की स्मृति भी थी। उन्हें याद है, मृत्यु-शैया पर पत्नी ने कहा था, “अब तो जाना है। एक बात मानोगे?”

हिचकी लेकर कृष्णगोपाल बोले, “कहो।”

“शीला का विवाह होने तक अपना विवाह मत करना!”

“क्या?”

“पुरुष हो, आयु भी क्या है परन्तु...”

आवेशपूर्ण दृढ़ता से वह बोले, “मैं विवाह नहीं करूँगा। तुम विश्वास रखी, मैं कभी विवाह नहीं करूँगा।”

“नहीं करोगे?”

“नहीं।”

पत्नी ने पति का हाथ अपने हाथ में लिया । दबाने की प्रबल चेष्टा की । मुस्कराई । श्वेत मुख पर वह रक्तिम मुस्कराहट, पति की आशा जैसे जागी, पर दूसरे ही क्षण पत्नी के हाथ की जकड़ जैसे ढीली पड़ती गई । धीरे अस्फुट स्वर में कहा था, “अच्छा !”

और उस ‘अच्छा’ शब्द के साथ ही गर्दन एक ओर लुढ़क गई । कृष्णगोपाल ने आशंकित मन झुककर देखा कि अन्तिम सांस बाहर आ गई है । अब अवशेष ही शेष है ।

उस दिन आवेश में एक वचन दे दिया था, लेकिन कृष्णगोपाल ने उसको भूठ नहीं होने दिया । दस वर्ष की शीला के लिए उस दिन से पिता के साथ वह मां भी बने । प्रलोभन के कितने अवसर आये, नातेदारों-मित्रों ने कितने वास्ते दिये, पर हर प्रलोभन, हर वास्ता उनकी तपस्या का एक और आधार बन गया । पैमे की प्रचुरता थी, रूप में आकर्षण था, पर इतने लम्बे सफर में किसी गलत जगह उनके कदम न पड़े । बेटी शीला उनके सबकुछ की हकदार बनी रही । उसे अच्छी-से-अच्छी शिक्षा दी । अपनी शक्ति से अधिक दहेज देकर उसका विवाह किया । हां, आवेश में आकर इस बार वह सचमुच गलती कर बैठे । जो कुछ देने को कहा था वह दे न सके, फिर भी इतना दिया कि समाज ने दांतों-तले अंगुली दबाई ।

और इस तपस्या का यह अन्त ! उनका अन्तर जैसे व्यथा और वेदना से टीस उठा । वह उसी आवेश में रुड़की जा पहुंचे ।

उस दिन भी सन्ध्या थी । चुपचाप नहर के किनारे-किनारे वह वहां पहुंच गए, जहां शीला का अवसान हुआ था । कई क्षण तक लहरों के उस उन्माद को देखते रहे, जिसमें शीला खो गई थी । एकाएक उन्होंने पाया जैसे शीला उस फेनिल जलराशि के नीचे से पुकार रही है, जैसे उसका चिर-परिचित मुस्कराता मुखड़ा ऊपर उभर रहा है ।

“शीला, शीला, शीला” वह अस्पृष्ट स्वर में बोले, आगे बढ़े । शीला की मुस्कान और स्पष्ट हुई, अधर खुले, “पिताजी !”

वह वेग से कांप आए । उन्होंने अनुभव किया, जैसे उन्हें कोई खींच रहा है, कह रहा है, “गिर पड़ोगे साहब !”

‘साहब’ शब्द ने उनकी कल्पना पर आघात किया । चकित-कंपित

उन्होंने पाया कि जहां वह खड़े हैं वहां से आगे, बस लहरों की सीमा है। भयातुर वह मुड़े, देखा, एक थका निस्तेज मजदूर उन्हें पीछे खींच रहा है।

“तुम...तुमने खींचा मुझे ?”

“सरकार, यहां खतरा है !”

“खतरा !” वह सोच में पड़ गए। उस निर्धन से मन की व्यथा कैसे कहें ! इतना ही बोले, “यहां मेरी बेटी डूबी थी।”

“आपकी बेटी !”

“हां, शीला मेरी बेटी थी।”

मजदूर का नाम अब्दुल था। इतना सकपका गया कि सहानुभूति के दो शब्द भी उसके मुख से नहीं निकले। यन्त्रवत् आगे बढ़ गया। न जाने क्यों, उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगा। पर वह कुछ सोच पाते कि इससे पूर्व अब्दुल फिर लौट आया। उन्हें और भी अचरज हुआ। पूछा, “कुछ कहना चाहते हो ?”

“जी हां।”

वह उतावले-से बोले, “तो कहते क्यों नहीं ? कहो भाई !”

अब्दुल ने अब दृढ़ता से कहा, “सरकार, बड़ी वैसी बात है।”

यह जैसे भुंभुला उठेंगे, “ऐसी-वैसी क्या, भिन्नको मत, जल्दी कहो।”

अब्दुल ने एकदम कसा, “मेमसाहब नहर में गिरी नहीं थीं।”

मानो वज्रपात हुआ, पर स्पष्ट रूप से समझे नहीं। सकपकाकर, “गिरी नहीं थी ?”

“जी हां, उन्हें साहब ने गिरा दिया था ?”

फिर वज्रपात हुआ। हतप्रभ-से वह बोले, “साहब ने गिरा दिया था ?”

“जीहां।”

कई क्षण जैसे वह शून्य में खो गए। उसके बाद एकाएक बोले, “तुम झूठे हो।”

“जी नहीं, जी नहीं। मैं...मैं झूठा नहीं हूं।”

“तुमने अपनी आंखों से देखा था ?”

“जी। देखा तो नहीं, पर कानों से सुना था।”

इसपर पिता का व्यग्र होना स्वाभाविक था। कुछ धीमे स्वर में बोले, “तुम्हारा मतलब क्या है ? साफ कहो।”

और जब अब्दुल ने अपनी कहानी सुनाई तब उन्हें सन्देह नहीं रहा। घटना स्वतः ही स्पष्ट होती चली गई। दहेज को लेकर बैरिस्टर साहब की उपेक्षा, नरेश के पत्रों में कोठी और ब्यूक की चर्चा और शीला की दबी हुई व्यथा। एक दिन बातों-बातों में उन्होंने भिन्नकते हुए शीला से पूछा था, “बेटी ! नई गृहस्थी में कोई कष्ट तो नहीं है ?”

शीला हँस पड़ी, “कष्ट क्यों होगा, पिताजी। सब ठीक है। महंगाई के कारण...”

पिता भिन्नक से मुक्ति पाने को हँसे थे, “मैं महंगाई की बात नहीं पूछता। तुम्हारी बात पूछता हूँ।”

“मुझे कोई विशेष अभाव नहीं है।” कहते-कहते पिता-पुत्री की दृष्टि मिल गई। शीला लजाकर वहां से भाग गई। पिता पिघल आए। मन-ही-मन कहा, पगली। अपनी मां की तरह भोली है। पर नरेश भी क्या मेरी तरह नारी के हृदय को समझता है !

लेकिन उनके पारखी हृदय ने बेटी के अगले पत्रों में स्पष्ट पढ़ा कि वह सुखी नहीं है। लेकिन अदृष्ट इतना शीघ्र राहु बनकर उनकी बेटी को ग्रस लेगा, इसकी कल्पना भी वह नहीं कर सके थे। पर जो कल्पना में नहीं आया, उसीको प्रत्यक्ष देखकर अब उनका आक्रोश फूट पड़ा। फिर जो उन्होंने प्रतिज्ञा की, वह चाणक्य के शिखाबन्धन से कम हड़ नहीं थी।

इसी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए उन्होंने लाहौर के सुप्रसिद्ध वकील श्री कन्हैयालाल चावला की शरण ली। चावला के चारों ओर अनेक रहस्यमयी कहानियां जुड़ गई हैं। पर उनकी प्रतिभा और प्रसिद्धि ने उनके यश को कभी धूमिल नहीं होने दिया। वे रंगीले व्यक्ति हैं। मुक्तता में उनका विश्वास है, जैसे कोई व्यथा-वेदना उन्हें छू ही नहीं सकती। लेकिन जो पास हैं वे जानते हैं कि एक व्यथा है, जो उनके अन्तर को भीतर-ही-भीतर कुरेदनी रहती है। उनकी पुत्री अनीला सीमा के उस पार ही रह गई है। वह अमृतसर मेडिकल कालेज में पढ़ती थी और बंटवारे से कुछ पूर्व यात्रा पर मुल्तान गई थी। उसके वाद नहीं लौट

सकी। ढूँढ़ने के सभी सम्भव प्रयत्न विफल हो गए। आज भी कभी-कभी आकाशवाणी से सन्ध्या के समय खोये हुए लोगों की श्रेणी में उसका नाम सुनाई पड़ता है।...“अनीला कुमारी, आयु २० वर्ष, रंग रक्तिम गौर, कद लम्बा, शरीर स्वस्थ, नक्श तीखे, विनम्र और मधुर स्वभाव, मुख पर बाई ओर तिल, पंजाबी, हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी और फ्रांसीसी जानती है। मुल्तान से आनेवाले किसी कैम्प में हो सकती है।” इत्यादि इत्यादि।

जो दूर हैं, उनका आरोप है कि श्री चावला को अपनी इस लडकी की विशेष चिन्ता नहीं है। इसका कारण भी वह बताते हैं कि अनीला उनकी प्रथम पत्नी की सन्तान है, जो कुछ वर्ष पूर्व रहस्यमय वातावरण में स्वर्ग सिधार गई थी। उसके एक महीने के भीतर-ही-भीतर उन्होंने एक आधुनिका से विवाह कर लिया था।

वे यह भी मानते हैं, कन्हैयालाल चावला जो पति हैं, वह उस कन्हैयालाल चावला से, जो फौजदारी के वकील हैं, नितान्त भिन्न हैं और अनीला के भी। कन्हैयालाल चावला उन दोनों से ही अलग हैं। इसलिए कृष्णमोर्पाल ने पति और पिता कन्हैयालाल को पीछे छोड़कर वकील कन्हैयालाल को स्वीकार करने में संकोच नहीं किया।

यह नितान्त संयोग की बात है कि बड़े भाई ने रतिराम की पैरवी के लिए भी इन्हीं श्री चावला को नियुक्त किया और उस सिलसिले में उन्हें नीलम के घर जाना पड़ा। वहीं एक दिन उनकी भेंट गोपाल से हो गई। जैसे नेत्रों में धुआँ भर आया हो, बोले, “तुम !”

गोपाल ने उसी व्यग्रता से कहा, “आप यहां ?”

“मैं रतिराम का वकील हूँ।”

गोपाल मुस्कराया, “दुर्भाग्य ने यहां भी हमारा पीछा नहीं छोड़ा। हम आज भी दो विरोधी कैम्पों में हैं।”

चावला म्लान हँसी हँसकर रह गए। कई क्षण मौन रहने के बाद गोपाल ने पूछा, “अनीला की कोई सूचना मिली ?”

“नहीं गोपाल,” फिर सिगरेट को पैर के नीचे कुचलते हुए बोले, “तुम क्या यहीं रहते हो ?”

“अभी तो हूँ, पर शीघ्र ही दिल्ली आना चाहता हूँ।”

“हूँ।”

“आप कहां ठहरे हैं?”

“कहीं नहीं। कार से आया हूँ। आज ही लौट जाना चाहता हूँ। पर एक और केस हाथ में आ गया है। शायद रुकना पड़े।”

“जानता हूँ। बैरिस्टर बुधवार के लड़के का केस है। रुकिये तो बातें करूंगा।”

“उसमें भी कुछ रुचि है?”

गोपाल मुस्कराया। फिर भी प्रश्न को टालकर बोला, “तो आशा करूँ?”

“अकेले हो?”

“हां।”

उसके बाद फिर कई क्षण तक मौन खड़े सिगरेट पीते रहे। बाहर जितनी शान्ति थी, अन्तर में उनना ही तुमुल नाद था। इसी कारण कभी-कभी कश बहुत गहरा आता था। उतने समय में गोपाल उन्हें देखता ही रहा, फिर एकाएक बोला, “आइये। नीलम के बारे में जानना चाहेंगे तो...”

बात काटकर उसी तीव्रता से चावला बोले, “आऊंगा गोपाल!”

“नीमवाली गली में तीसरा मकान गोपाल का ही है। हरे रंग के किवाड़ हैं।”

“अच्छा-अच्छा।” चावला अब खुलकर हँसे और आगे बढ़ गए। जैसे कुछ याद आया हो, मुड़े और हाथ जोड़कर कहा, “नमस्ते!”

“नमस्ते, चाचाजी!”

न जाने क्या हुआ ‘चाचाजी’ ऐसा सम्बोधन सुनकर चावला तीव्र गति से कांपे। कोई देख पाता तो उनके रक्तिम गालों पर दो ओस-कण टुलक आए थे, लेकिन सौभाग्य से उनके साथी उनके पूर्व सम्बन्धों से एकदम अनभिज्ञ थे। उन्होंने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

उन्नीस

प्रभात उस दिन घर लौटा तो अत्यन्त प्रफुल्लित था। आते ही मालती से पूछा, “तुमने कुछ सुना ?”

अनबूझ-सी मालती बोली, “किस बारे में ?”

“ऊंहं। हम नहीं बतायेंगे। बूझो तो जानें।”

“बूझूँ !” मालती खिलखिला आई। फिर सोचने का नाटक करती हुई कहने लगी, “पिताजी आ रहे हैं।”

“नहीं।”

“अच्छा, आप हमारे घर चल रहे हैं ?”

“नहीं।”

“तो फिर नीलम के मुकदमे या फिर नरेश के मुकदमे का निर्णय होने वाला है।”

“ऊंहं, यह भी नहीं।”

“तो मालती ने अत्यन्त विनम्रता से कहा, “तो हम हार गए।”

“ऊंहं, हार कैसे गए ! प्रभात के रहते दिया-तले अंधेरा नहीं हो सकता।”

मालती अब एकाएक मुस्करा आई। क्षण-भर ठोड़ी पर तर्जनी रख कर सोचने का अभिनय किया, फिर गम्भीर स्वर में बोली, “हम जान गए। आप... आप पी०सी०एस० की परीक्षा में पास हो गए।”

फिर तो जैसे दो उद्दाम प्रणयी युगों-बाद मिले हों। आत्म-विभोर दोनों कई क्षण तक...

और तभी सहसा द्वार पर आहट हुई।

मालती ने छिटककर अलग होते हुए कम्पित स्वर में कहा, “इस समय कौन ?”

“रुको मालती,” प्रभात बोला, “इस क्षण कोई भी हो, उसे रुकने दो। मैं तुम्हारी छवि अपने नयनों में भर लेना चाहता हूँ।”

“रुकने का नाम मृत्यु है, प्रभात। जबतक मैं लौटती हूँ, तबतक नयन मूंदकर मेरी छवि का ध्यान करो।”

और खिलखिलाती हुई भाग गई। लौटी तो सुनील साथ था। सदा की तरह हँसता-खिलखिलाता। एक पत्र उसने मालती को दिया, बोला, “ललिता ने दिया है। जरूरी काम से गोपालदा से मिलने गया था।”

उत्सुकता से मालती पत्र पढ़ने लगी। सुनील प्रभात से बोला, “तुमसे नीलम के बारे में कुछ बातें करनी हैं।”

प्रभात ने कहा, “नीलम के लिए तुम लोगों ने इतना किया है...”

बात काटकर सुनील बोला, “जो किया है उसकी बात छोड़ो। चिन्ता उसकी है, जो करना है। मालती, तुम भी सुनो।”

मालती पत्र पढ़ने में इतनी तन्मय थी कि अपना नाम सुनकर चौंक आई। बोली, “क्या?”

“नीलम की बात कहता हूँ।”

“जी, कहिये।”

“उसने अपनेको बहुत संभाला है, पर उस ‘घटना’ को भूल नहीं पाती।”

“कोई भूल भी नहीं सकता।”

“नहीं भूल सकता, तो क्या इसीलिए आत्महत्या करनी होगी?”

“मैं यह नहीं कहती। उसका विवाह यदि किसी मनुष्य के साथ हो सके तो...”

सुनील एकदम बोला, “विवाह क्या पशु से भी होता है?”

“अक्सर यही तो होता है।”

दृष्टि उठाकर सहसा सुनील ने मालती को देखा। कुछ जवाब नहीं दे सका। प्रभात भी मौन था। मालती ने फिर धीरे से कहा, “मेरे कहने का आशय शायद आप समझे नहीं। नीलम का विवाह यदि गोपालदा से हो सके तो उसकी रक्षा हो सकती है।”

सुनील विजय-गर्व से मुस्करा आया। बोला, “मैं तो डर गया था। अरे, यही तो मैं भी कहता हूँ, इसीलिए गोपाल से मिलने गया था।”

प्रभात ने पूछा, “उनसे बातें की थीं?”

“हां।”

“तो क्या कहा उन्होंने?”

सुनील ने कुछ संकोच से कहा, “ऐसा जान पड़ता है, वह किसी और

लड़की से विवाह करना चाहता है ।”

“किसी और से ! कौन है वह ?”

“ठीक-ठीक नहीं जान सका । उसकी चर्चा करते समय वह इतना द्रवित हो उठे, कुछ ऐसे देखने लगे कि मेरी आंखें भुक गईं ।”

प्रभात ने मौन खड़ी हुई मालती की ओर सप्रश्न देखा, “तुम्हें कुछ पता है ?”

“ीक नहीं कह सकती । लेकिन लाहौर के एक वकील की लड़की की उन्होंने कई-बार चर्चा की है । अमृतसर मेडिकल कालेज में पढ़ती थी ।”

सुनील एकदम बोला, “वही हो सकती है । जान पड़ता है, वह सीमा के उस पार ही रह गई है ।”

मालती बोली, “हां-हां, मां को एक बार यही सब कहानी सुना रहे थे । पर यह नहीं कहा कि उनका उससे कुछ सम्बन्ध है ।”

सुनील गम्भीर हो आया, “बात काफी गम्भीर है । मालती, क्या तुम इस बात का पूरा पता लगा सकती हो ?”

“प्रयत्न करूंगी ।”

“अच्छा, अब कुछ खिलाओ-पिलाओ । तुम्हारे साहब जज बनने वाले हैं ।”

वातावरण एक ही क्षण में फिर उन्मुक्त हो आया । उमस के बादल बरसकर चले गए । चाय पीकर जब सुनील लौट गया तब प्रभात ने मालती से कहा, “कुछ ही क्षणों में न जाने क्या-से-क्या हो गया ।”

“अभी तो बहुत-कुछ होना शेष है ।”

“नहीं-नहीं मालती...अब और कुछ नहीं होगा । अब तो हम और तुम...”

“जी हां, मैं ही हूं । लेकिन मेरे पास भी एक समस्या है ।”

प्रभात ने विनोद किया, “मैं समझता हूं वह बहुत गहरी है ।”

“गहरी भी और गम्भीर भी । ललिता ने फिर लिखा है ।”

“क्या लिखा है ?”

“जो कई बार लिख चुकी है ।”

“यानी पिताजी विवाह करना चाहते हैं ।”

“जी हां। इन्टरव्यू भी हो चुका है।”

प्रभात मुस्कराया, “बड़ा रोचक रहा होगा।”

“लड़के को लड़की पसन्द है।”

“तब क्या समस्या है ? विवाह कब कर रहे हैं ?”

मालती ने उसी शान्ति से कहा, “समस्या यही है कि लड़की को लड़का पसन्द नहीं है।”

प्रभात अब विनोद नहीं कर सका। ललिता के मन की बात वह भी जानता है। धीरे से बोला, “क्या अब भी सत्येन्द्र की बात उसके मन में है ?”

“उसने यही लिखा है।”

“मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर पिताजी...”

“वह कभी स्वीकार नहीं करेंगे। मां मर जायंगी, पर ललिता का विवाह सत्येन्द्र से नहीं करेंगी।”

“तब ?”

“तब क्या ! विवाह मां-बाप का तो हो नहीं रहा !”

“सो तो जानता हूं।”

“जानते हो तो मार्ग ढूंढना होगा।”

“तो उसे यहीं बुला लो। सत्येन्द्र से बातें कर लेंगे। दोनों को मंजूर है तो विवाह क्यों नहीं होगा ?”

मालती ने सहसा पति की ओर देखा। कहा, “सच ! हो सकेगा ?”

“विवाह मात्र आवरण है और मुझे प्रेम-व्रेम में भी बहुत विश्वास नहीं है। यौवन का उफान है, जो कभी स्थिर नहीं रहता। न रहे, उसकी भी मुझे चिन्ता नहीं। केवल इस वास्तविकता को उन दोनों को जान लेना चाहिए।”

मालती ने कहा, “जीहां, जान लेना आवश्यक है। फिर कुछ भी हो, दुःख नहीं होता।”

प्रभात अचरज से हँसा, “तुम तो मालती, बड़ी समझदार हो गई हो।”

मालती ने ललचाए नयनों से पति की ओर देखा। बोली, “समझ

का मुँहसे क्या काम ! कभी-कभी आपसे उधार ले लेती हूँ ।”

“नहीं मालती, तुम सचमुच बदल गई हो ।”

“सच !”

“हां, कभी-कभी तो लगता है, जैसे मैं छोटा हूँ, बहुत छोटा हूँ ।”

मालती व्यग्र हो उठी । बोली, “चलो हटो । क्या आर्य-शाय बोलते हो । मैं जो हूँ आपके कारण हूँ । दुनिया में कुछ लोग होते हैं, जो हनुमान की तरह होते हैं । जाम्बवान को आकर उन्हें उनकी शक्ति का ध्यान कराना होता है ।”

प्रभात ठहाका मारकर हँस पड़ा, “तो मैं जाम्बवान हूँ । रीछ...”

मालती और भी परेशान हो आई, “न-न, मेरा मतलब यह नहीं था । मैं तो...”

बात काटकर प्रभात ने कहा, “जानता हूँ तुम्हारा मतलब । लेकिन ललिता को जाम्बवान की एकदम जरूरत नहीं है । वह अपने सत्यवान को खोज चुकी है ।”

मालती ने मुस्कराकर कहा, “सत्येन्द्र उसका सत्यवान बने, इससे बढ़कर उसका और क्या सौभाग्य हो सकता है ! मैं उसे अभी पत्र लिखती हूँ ।”

प्रभात शरारत से हँसे, “न-न, अभी नहीं । कल...”

बीस

जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण भी आते हैं जब मनुष्य अपने ज्ञान को स्वयं ही झुठलाने को आतुर हो उठता है । गोपाल के मन में आज यही प्रश्न उठ रहा था, काश कि उसके पास याद करने को कुछ न होता । पर जो स्मृति-पटल पर अंकित हो चुका है, उसे वह कैसे मिटाये ! कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं, जो केवल याद रहने के लिए ही घटती हैं । उस दिन अचानक चावला से मिलना हो गया । वह मात्र संयोग हो, ऐसा ही नहीं था । उनको कहीं-न-कहीं मिलना ही था । सुनील ने जब पहली बार गोपाल

से कहा था, “गोपालदा, सच कहता हूं। नीलम से विवाह कर लो। मानता हूं विवाह इस तरह नहीं हुआ करता। पर कभी-कभी...”

तब एकबारगी ही गोपाल बोल उठा था, “इस कभी...कभी को मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता, सुनील।”

“पर नीलम...”

सहसा गोपाल की ओर देखकर ठिठक जाना पड़ा। दृष्टि तरल हो आई थी और वह अपलक शून्य में देख रहा था। एकाएक क्षण-भर के गहन संघर्ष के बाद उसने गर्दन मोड़कर कहा, “तुमसे अधिक उसे जानता हूं, परन्तु विवश हूं।”

यह बात समाप्त करने की चेतावनी थी। सुनील उस समय चुप हो गया। परन्तु कुछ दिन बाद वह फिर आया। उस उन्मुक्त को कुछ भी तो आसानी से नहीं बांध सकता। सहज स्वाभाविक स्पष्टता से पूछा, “क्षमा करना गोपाल, आप किसीसे प्रेम करते हैं?”

गोपाल ने दृष्टि उठाकर सुनील को देखा। कहा, “ऐसा क्यों पूछ रहे हो?”

“आप जानते हैं, दादा।”

गोपाल कई क्षण चुप रहा। इतने समय में उस एकान्त कमरे में गहन मौन बोलता रहा। फिर गोपाल ने सुनील से कहा, “प्रेम की बात मैं नहीं जानता, पर एक और लड़की से विवाह करने को वचनबद्ध हूं।”

“कौन है वह?”

“कन्हैयालाल चावला की लड़की अनीला।”

सुनील ने सहसा गोपाल की ओर देखा—सागर में जैसे लहरें ज्वार पर हों। विस्मित हो धीरे-धीरे बोला, “मैं भूलता नहीं तो यह चावला वह हैं जिन्होंने, कहते हैं, अपनी पहली पत्नी को जहरीली सूई लगवाकर मार डाला था। और उनकी लड़की सीमा के उस पार ही रह गई थी।”

“आपने ठीक सुना। अनीला अभी तक उसी पार है।”

“क्या यह सब सच है, गोपालदा?”

गोपाल मुस्कराया, “मैंने स्वयं कुछ नहीं देखा, लेकिन अनीला का भी यही विश्वास रहा है।”

“पर ऐसा क्यों हुआ ?”

“क्योंकि वह वकील साहब के योग्य नहीं रही थी। उनके नये समाज से उसे घृणा थी। इसीलिए जो चावला साहब उसके रूप-गुण की चर्चा करते नहीं थकते थे, वे ही एक दिन उससे तग हो उठे। पहली बार वह केवल मनुष्य थे, दूसरी बार प्रसिद्ध वकील हो चुके थे। लक्ष्मी उनके चरणों में लोटने लगी थी। वह तब रूप का मात्र आत्मसमर्पण नहीं चाहते थे, उसे भोगना चाहते थे। उसमें रस का आरोपण चाहते थे, लेकिन उनकी पत्नी थी कि वस्त्र पहनना तक नहीं जानती थी। वह लिपस्टिक, पाउडर और नेल-पॉलिश से घृणा करती थी। वकील साहब नग्न नृत्य के प्रेमी थे, पर पत्नी को ‘डांस’ का नाम सुनकर कपकपी आती थी। वकील साहब पेग-पर-पेग चढ़ा जाते थे, पर वह शराब की गंध-मात्र से दूर भागती थी। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि वकील साहब ने एक नये तर्क का आविष्कार कर डाला।”

सुनील हँस पड़ा, “मैं जानता हूँ, वह तर्क यह था कि प्राणिशास्त्र के अनुसार हर सात साल के बाद मनुष्य के शरीर में नई ग्रथियाँ पैदा होनी हैं। उसकी मान्यताएं बदल जाती हैं। उसे नये साथी की जरूरत होती है।”

“जीहां, वह तर्क यही था। जब उनकी पत्नी ने उनके इस नये तर्क और इसपर आधारित नई मान्यताओं का विरोध किया, तब उन्होंने उसे अपने रास्ते से हटा दिया।”

गोपाल को यही बात आज फिर याद आ रही है। उसे कुछ और भी याद आता है...

...मां के मरने पर अनीला रोई थी। उसके रोने पर गोपाल भी रोया था। वह तब कालेज में पढ़ता था और अनीला मैट्रिक की परीक्षा की तैयारी कर रही थी। उसके पिता और चावला पुराने मित्र थे। इसी नाते जब वह लाहौर पढ़ने गया, तब वह उसके अभिभावक बन गए। पिता नहीं थे, इसीलिए और भी अधिक बन गए। अनीला की मां उसे बहुत प्यार करती थी। अनीला में और उसमें भी प्रगाढ़ स्नेह था। न जाने क्यों, अनीला पिता से डरती थी। वह उनसे कुछ नहीं कहती थी।

जो कुछ कहती, गोपाल से कहती। यही सम्बल उनके अन्तर में अनजाने ही एक अटूट बन्धन के बीज बो रहा था। फिर मां मर गई तो अनीला और भी गोपाल पर निर्भर रहने लगी। वह आता तो जैसे उसके सांस लौट आते। उसकी बातों में वह जीवन की प्रेरणा खोजती। पर न जाने क्यों, उसका आना कम होता जा रहा था। वह लम्बे-लम्बे पत्र लिखने लगा था और उनमें हृदय का समस्त स्नेह उडेल देता था। मनुष्य ग्रामने-सामने बातें करने में इतना क्यों नहीं खुलता ! पत्रों में क्यों खुल जाता है ! शायद इसलिए कि वहां शरीर का व्यवधान नहीं रहता है।

घटनाक्रम फिर तेजी से घूमा। मां को मरे मुश्किल से छः महीने बीते होंगे कि पिता ने एक ग्रेजुएट युवती से विवाह कर लिया और अनीला मैडीकल कालेज में पढ़ने अमृतसर चली गई और गोपाल उसके पास, अत्यन्त पास, आ गया।

वकील साहब ने एक दिन गोपाल को बुलाकर पुछा, “क्यों गोपाल, विवाह करने के बारे में तुम्हारा क्या विचार है ?”

गोपाल ने कहा, “अपने विचारों के विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता, पर मां का विचार है कि मुझे विवाह कर लेना चाहिए।”

“तुम्हारी मां समझदार है। तुम एम० ए० कर चुके। प्रोफेसर हो। वैसे तो मुझे इस बारे में कुछ कहने का कोई अधिकार नहीं है, पर अनीला...”

गोपाल ने सहसा बात काट दी, “मेरा विचार है काकाजी, कि आप हम लोगों के विवाह की चिंता बिल्कुल छोड़ दें। जब मन होगा, कर लेंगे।”

उसके बाद उसने बात को आगे नहीं बढ़ने दिया। अनीला नादान नहीं थी। मैडीकल कालेज के मुक्त वातावरण में उसने अमित शक्ति पाई, अपनेको पाया, लेकिन जब कभी मां का प्यारा-प्यारा मुख आंसुओं में उभर आता, तब उसके कानों में कुछ ऐसे स्वर उठते कि वह सिहर-सिहर उठती। धीरे-धीरे फुसफुसाकर कोई कह जाता, “तुमने कुछ सुना। तुम्हारे पिता ने तुम्हारी मां को इसलिए मरवा दिया था कि वह जुआ नहीं खेलती थी, नाचती नहीं थी, पीती नहीं थी और तुम्हारी नई

ग्रेजुएट मां नाचना, खेलना और पीना सब कुछ जानती है...”

यही चर्चा अनीला के जीवन का शाप थी और यही शक्ति थी। कभी रात को सोते-सोते वह जाग उठती और सोचने लगती—मेरे पिता ने मेरी मां की हत्या की, क्योंकि वह उनका साथ नहीं दे सकती थी। पति को ऐसी पत्नी चाहिए जो उसका साथ दे सके, उसका साथ निभा सके। पर...पर साथ क्या शक्ति से दिया जाता है ! उसके लिए स्वेच्छा अनिवार्य है। साथी वही है जो समझता है, और मां पिताजी को नहीं समझती थी।...नहीं-नहीं, वह समझती तो थी, पर साथ नहीं दे पाती थी।...नहीं दे पाती थी तो उसे पिताजी से अलग हो जाना चाहिए था।...लेकिन...लेकिन क्या एक हिंदू स्त्री पति से अलग हो सकती है ! क्या उसे यह अधिकार है ? नहीं है तो होना चाहिए। जो अबतक नहीं है, वह आगे क्यों न हो ?

एक दिन गोपाल से पूछा, “क्यों गोपाल, क्या मां पिताजी से अलग नहीं हो सकती थी ?”

“नहीं।”

“क्यों ?”

“क्योंकि वह हिंदू नारी थी और हिंदू-शास्त्र नारी को यह अधिकार नहीं देता।”

“पुरुष को देता है ?”

“पुरुष अधिकार की चिंता नहीं करता। अपनी इच्छा-पूर्ति का कोई-न-कोई रास्ता ढूँढ़ निकालता है।”

“नारी क्या वह रास्ता नहीं ढूँढ़ सकती ?”

“नहीं।”

“क्यों ?”

“क्योंकि वह नारी है।”

तब सहसा कुछ होकर अनीला ने कहा, “तुम भी पुरुष हो ?”

गोपाल ने दृष्टि उठाकर अनीला को देखा और जब उसने उस वाक्य का अर्थ समझा तब मुस्करा आया, “अपने बारे में राय देने का किसीको अधिकार नहीं है।”

अनीला ने कहा, “मैं आपकी राय जानना भी नहीं चाहती।”

“यह शुभ लक्षण है, अनीला। लेकिन...” उसने कुछ भिन्नकर कहा, “लेकिन क्या मैं जान सकता हूँ कि आपकी मेरे बारे में क्या राय है?”

अनीला ने बिना उसकी ओर देखे कहा, “अपने बारे में उत्सुकता प्रकट करना कोई शुभ लक्षण नहीं है।”

गोपाल सहसा जोर से हँस पड़ा, “ठीक कहती हो अनीला; पर कभी-कभी शुभ लक्षणों की अवहेलना करनी पड़ती है।”

अनीला ने दृष्टि उठाकर उसकी ओर सप्रश्न देखा, फिर धीरे से दृष्टि भुकाकर कहा, “तुम क्या कहना चाहते हो?”

“यही कि तुम मेरे साथ रहने कब आ रही हो?”

अनीला न कांपी, न दृष्टि उठाकर उसने देखा। उसी प्रकार नीची नजर किये धीरे से कहा, “तुम्हारा मतलब अब भी नहीं समझी। तुमसे अलग मैं कहा हूँ? जो हूँ तुम्हारे साथ हूँ।”

“अनीला!”

“पर गोपाल”, अनीला ने अब दृष्टि उठाई, “पर गोपाल, मैं समझती हूँ कि यह स्थिति अच्छी नहीं है। मैं तुम्हारे बिना ‘मैं’ बनना चाहती हूँ।”

“क्या कह रही हो, अनीला?”

“यही कि मैं तुम्हारा भार नहीं बनना चाहती, तुम्हारी शक्ति बनना चाहती हूँ।” कहकर अनीला मुस्करा दी और उसने सीधे गोपाल की आंखों में भाँका। वह कुछ ऐसे मुस्करा रहा था कि अनीला भर उठी। गोपाल ने स्निग्ध पर दृढ़ स्वर में कहा, “अनीला, मैं अब कुछ नहीं कहूँगा।”...

न जाने क्यों, गोपाल के नयन सजल हो आये। उसे अनीला की याद सदा एक तरलता से भर देती है। स्मृति-पटल पर उसका आभास पाते ही एक हूक-सी उठती और उसका गला रुंध जाता। अनीला जुदाई में लाहौर होती हुई मुलतान गई थी। उसे अच्छी तरह याद है, तब उसने कहा था, “अनीला, जाना क्या जरूरी है?”

“जाना है, बस, इतना मेरे लिए काफी है।”

“पर आजकल जैसी हवा है...”

“मुझे जिदगी से चिपटे रहने का मोह नहीं है, गोपाल। मैं उससे मुहब्बत करती हूँ और अब तो मैं डाक्टर हूँ।”

“मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहता।”...

अनीला ने सहसा उसे टोक दिया, कहा, “गोपाल, तुम झूठ बोल रहे हो। तुम रोकना चाहते हो।”

“अनीला...”

“गोपाल, मैं तुम्हें जानती हूँ।”

“सच !”

दोनों हँस पड़े। फिर अनीला ने कहा, “मेरा विश्वास करो, मैं लौट आऊंगी।”

हँसते-हँसते गोपाल ने उत्तर दिया, “मैं किसीका विश्वास नहीं करता, अपना भी नहीं।”

“अपने और मुझमें क्या कोई अन्तर नहीं है ?”

“कहां है ! मैं और तुम दोनों एक हैं।”

सहसा अनीला के मुख पर लज्जा का रक्त उभर आया। आँखें भुक गईं। गोपाल के पास आकर उच्छ्वसित स्वर में बोली, “अब नहीं जाऊंगी।”

“अब तो जरूर जाना।”...

“गोपाल !”

“एक हैं तो क्या बांधने के लिए हैं !” गोपाल ने अपना वाक्य पूरा किया।

अनीला ने तब आत्म-विभोर होकर गोपाल को ऐसे देखा था कि उस क्षण उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व जैसे सत्तारहित हो गया हो। जैसे दुई कहीं न हो, बस सबकुछ ‘अद्वैत’ हो, ‘एक’ हो। कई क्षण बाद जब गोपाल ने दोनों हाथों में लेकर अनीला का मुख ऊपर उठाया, तब उसकी संज्ञा लौटी। हिरनी की भांति सहसा छिटककर वह दूर जा खड़ी हुई। गोपाल ने विह्वल होकर कहा, “अनीला, रुको।”

अनीला का श्वास वेग से चल रहा था । वह बोली, “नहीं, गोपाल, नहीं ।”

लेकिन जब विदा का अवसर आया, तब वही अनीला उसकी छाती में मुंह छिपाकर फफक उठी । उसने अस्फुट स्वर में कहा, “गोपाल, मेरे बस तुम्हीं हो...तुम्हीं, इतना याद रखना...!”

गोपाल को लगा जैसे कोई द्वार पर आहट कर रहा है । उठकर देखा, श्री चावला हैं ! बोल उठा, “आप !”

“उस दिन तुमसे आने को कहा था, सो आ गया हूं ।”

गोपाल को समझने में कुछ विलंब लगा । श्री चावलाने कहा, “बैठ सकता हूं ?”

“जी...जी...यहां बैठिये ।”

“कैसे हो गोपाल ?”

“अच्छा ही हूं ।”

“सिगरेट पी सकता हूं ?”

“शौक से...” गोपाल ने मुस्कराने की चेष्टा की ।

फिर कई क्षण वकील साहब सिगरेट पीते रहे । कड़वा धुंआ उठता और मिटता रहा, पर उनके मन में जो घुटन थी वह नहीं मिटी । जैसे वह थकान अनुभव कर रहे थे, पर सतर्क भी थे कि कहीं थकान प्रकट न हो जाय । इसलिए वह कई बार धुंआ छोड़ते-छोड़ते मुस्कराये, आंखें कुछ मूंदीं, फिर सहसा बोले, “गोपाल, तुम बुधवार के बेटे के बारे में कुछ बातें करना चाहते थे ।”

“जीहां ।”

“वह मुकदमा समाप्त हो गया ।”

“क्या !”

“हां, उसके ससुर ने मुकदमा वापस ले लिया ।”

गोपाल इसके लिए तैयार नहीं था । विस्फारित-नयन बोला, “आखिर क्यों ?”

वकीलसाहब ने कहकहा लगाया, “क्यों क्या ! कुछ लोग चक्रम होते हैं । उस दिन कहते थे कि मैं नरेश को फांसी पर लटका देखना

चाहता हूँ। उसने मेरी बेटी की हत्या की है; और आज कहते हैं कि बेटी का हत्यारा मैं हूँ।”

“बेटी का हत्यारा मैं हूँ?”

“हां, उन्होंने लिखा है कि मैं उन लोगों को जानता था। उनके लालच को शांत करने का मैंने पूरा प्रयत्न किया। मैंने बेटी के भविष्य को सुखी बनाने के लिए धन और पद को महत्व दिया। मैं भूल गया कि धन और पद का प्रेम से वैर है।”...और यह कहते-कहते उन्होंने फिर अट्टहास करने की चेष्टा की, पर हुआ यह कि फुसफुसाकर रह गए, जैसे सहसा गुब्बारे ही हवा निकल गई हो। बोले, “बूढ़ा कुछ सनकी है। फीस जो ठहराई थी, पूरी चुका गया है।”

“आपने उनको समझाया नहीं?”

“कोई सवाल नहीं था। वह नरेश और उसके पिता को पत्र लिख चुके थे। फिर मुझे वही करना था जो वह चाहते थे, और मैंने वही किया।”

“कुछ समझ में नहीं आता...”

“हां, गोपाल, बहुत-सी बातें किसीकी भी समझ में नहीं आती, पर इसी कारण वे गलत नहीं होतीं। मानव-स्वभाव बड़ा विचित्र है। अपनी जिदगी में मैंने इतनी विचित्रताएं देखी हैं कि मेरे लिए सब बातें साधारण हो गई हैं।”

कहते-कहते उन्होंने सिगरेट का कश खींचा। ओठों से परिश्रमपूर्वक धुआं निकाला, ऐश-ट्रे में सिगरेट को भाड़ा, फिर एकटक गोपाल को देखते हुए कहा, “नीलम ने मुझे पत्र लिखा है।”

गोपाल कांपा, “क्या?”

“नीलम ने पत्र लिखा है।”

“नीलम ने पत्र लिखा है! आपको?”

“हां।”

“किस बारे में?”

“रतिराम के बारे में।”

गोपाल फिर कांपा, पर दूसरे ही क्षण सम्भल गया। इस बारे में बहुत

कुछ सोच चुका था। मुस्कराकर बोला, “उसे छुड़वाना चाहती है ?”

इस बार वकीलसाहब के कांपने की बारी थी, “तुम जानते हो ?”

“जानता नहीं, अनुमान कर सकता हूँ।”

“तुम्हारा अनुमान ठीक है,” उन्होंने कहा, “नारी-चरित्र भी बड़ा अद्भुत है। वह लड़की निश्चित ही उस डाकू से प्रेम करती रही होगी।”

“असभव नहीं है।” उसने कई क्षण बाद धीरे से जवाब दिया।

“असभव होने का प्रश्न ही नहीं उठता। बिना प्रेम के कोई ऐसा पत्र नहीं लिख सकता।”

गोपाल ने जवाब देना चाहा, पर न जाने क्या सोचकर वह मौन हो गया और जब वकीलसाहब ने उसे बताया कि नीलम ने रतिराम की भाभी को पाकिस्तान न जाने देने के लिए प्रयत्न करने को भी लिखा है, तब भी वह मौन ही रहा। वकीलसाहब ने पूर्ववत् सिगरेट भाड़ते हुए कहा, “अब तो तुम्हें इन दोनों केसों के बारे में कुछ नहीं कहना।”

“नहीं।”

“हूँ।”

दोनों ने एक-दूसरे को देखा, फिर कई क्षण मौन रहे। गोपाल के मन में कभी नरेश की मूर्ति उभरती, कभी नीलम की, कभी रतिराम की स्नेह-जीर्ण मां की और कभी रहस्यमयी हँसी हँसने वाली उसकी भाभी की। तभी वकीलसाहब ने एक गहरी आत्मीयता के स्वर में कहा, “गोपाल !”

गोपाल ने सिहरकर कहा, “जी।”

“तुमसे एक सलाह लेना चाहता हूँ।”

गोपाल ने देखा, वकील साहब के नयन वर्षा-ऋतु के बादल की तरह गबरा आये हैं। उसका अपना मन भी कुछ गीला-गीला होने लगा। बोला, “किस बारे में...?”

“गोपाल, अनीला का पता लगाने में उस पार जाना चाहता हूँ।”

“क्या कहते हैं ?”

“अचरज होता है, गोपाल ! आखिर मैं बाप हूँ ! मुझे बेटी का पता लगाना ही चाहिए।”

उमड़-धुमड़कर असंख्य विचार गोपाल के मस्तिष्क में तेजी से घुस आये, पर उस क्षण वह कुछ न कह सका। एक बार फिर वकीलसाहब के नयनों में भांका। पाया कि उनमें स्नेह की तरलता भरी पड़ी है। तब कुछ सोचकर उसने उत्तर दिया, “आप जाकर क्या करेंगे?”

“मैं उन लोगों को जानता हूँ। वह वहां होगी तो मुझसे छिपी न रहेगी।”

“सुना है, सीमाप्रांत से भी परे कुछ स्त्रियां गई हैं।”

“वहां भी जाऊंगा...जा सकता हूँ।”

“आपको कौन जाने देगा?”

जिन आंखों में अभी आंसू थे, उन्हींमें मुस्कराहट चमक उठी, बोले, “कैसे जाना होगा, यह मैं जानता हूँ।”

“लेकिन...”

उसके मुंह से ‘खतरा’ शब्द निकलते-निकलते रह गया। उसे लगा जैसे ‘खतरे’ की बात उठाकर वह उनका नहीं, अपना ही अपमान करेगा। तब आगे का सूत्र खोकर वह हतप्रभ-सा हो गया और ठीक इसी समय बैरिस्टर बुधवार के मुंशी ने तेजी से वहां प्रवेश किया। दौड़ने के कारण उसकी सांस उखड़ रही थी। उसने हांफते हुए कहा, “जल्दी चलिये। नरेश ने आत्महत्या कर ली है।”

“क्या...!”

“नरेशकुमार ने आत्महत्या कर ली है।”

“नरेशकुमार ने आत्महत्या कर ली!” विस्फारित-नयन वकीलसाहब ने दोहराया और तेजी से बाहर निकलकर चले गए। गोपाल क्षण-भर ठिठका, फिर वह भी पीछे-पीछे चला गया।

बाईस

गोपाल जिस समय बैरिस्टर बुधवार के मकान पर पहुंचा, उस समय तक वहां मौत की छाया ने सबको ग्रस लिया था। देखा, बाहर सतर्क रूप

से आना-जाना हो रहा है, पर भीतर एक अशुभ और गहन मौन व्याप्त है। वही मौन कभी-कभी दर्द-भरी सिसकियों में फूट पड़ता है।

उसने एक परिचित डाक्टर को देखा, पूछा, “कोई आशा है ?”

डाक्टर ने कहा, “गोपाल, पोटाशियम साइनाइड कभी धोखा नहीं देता।”

गोपाल ने चाहा कि वह लौट जाय, पर हुआ यह कि वह सीधा वहां जा पहुंचा, जहां नरेश चिरनिद्रा में सोया हुआ था। देखा—सिर से पैर तक दुशाले से ढका वह तकिये पर सिर रखे लेटा है, उसके पैर सीधे हैं और हाथ छाती पर पड़े हैं। कुछ दूर पर डाक्टर और बैरिस्टर साहब कुछ सलाह कर रहे हैं।

वह कई क्षण मौन खड़ा रहा, फिर उसने धीरे से आगे बढ़कर नरेश के मुंह पर से चादर हटा दी जैसे वह किसी पश्चात्ताप से जलते हुए व्यक्ति का मुख है। उसके अर्द्ध-उन्मीलित नयनों से वेदना भरी पड़ती है और मस्तिष्क की नस फट जाने से रक्त की धारा नासापुट के पास से ओठों तक चली गई है। मुंह खुला हुआ है।

सहसा सिहरकर वह पीछे हट गया, लेकिन दूसरे ही क्षण वह साहस करके फिर पास आया। उसके नयन खोले, हृदय पर हाथ रखा, फिर शरीर को टटोलने लगा, मानो जानना चाहता है कि जो नरेश था वह आखिर क्या था और वह कहां चला गया। तभी सुना, डाक्टर कह रहे थे, “पुलिस को सूचना देनी ही होगी।”

वह कांप उठा। क्षण-भर में उसके मस्तिष्क में अनेक विचार कौंध गए—पुलिस ! पोस्टमार्टम ! मृत्यु के बाद दुर्गति !...लेकिन मृत्यु के बाद चेतना कहां रहती है जो दुर्गति होगी ?...

तभी फिर सुना, बैरिस्टर कह रहे थे, “दे लीजिये।”

डाक्टर बोले, “और कोई रास्ता नहीं बुधवार, काश कि...”

बैरिस्टर बुधवार ने सहसा गरदन उठाई। वह मुस्करा रहे थे। उनकी क्रूर आंखों में चमकनेवाली वह भयंकर मुस्कराहट उस क्षण ऐसी दयनीय लग रही थी, मानो जल्लाद को मौत का हुक्म सुनाया गया हो। उन्होंने कहा, “कानून को अपना काम करने दो, डाक्टर ! मैं सबकुछ

जानता हूं।”

यह बात उन्होंने इतनी दृढ़ता से कही कि एक साथ सब लोगों की दृष्टि उनकी ओर उठ गई। मां के चीत्कार की ध्वनि निरन्तर तीव्र हो रही थी, पर उस ओर ध्यान न देकर बैरिस्टर ने कहा, “पर यह आत्म-हत्या नहीं है।”

“क्या मतलब ?”

“मतलब यह कि यह आत्महत्या नहीं है, हत्या है।”

“हत्या ! किसने की हत्या ?”

“इसके ससुर ने।”

अचरज की भी एक सीमा होती है। डाक्टर ने अविश्वाम से पूछा, “इसके ससुर ने हत्या की है ?”

“नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता।”

इस बात का जवाब दिया चावलासाहब ने, “बैरिस्टरसाहब ठीक कहते हैं। यह पत्र पढ़िये।”

डाक्टर ने यंत्रवत् पत्र लिया और व्याकुल व्यग्रता से वह उसे पढ़ने लगे :

“मेरे प्यारे नरेश,

मेरा खत पाकर तुम्हें अचरज होगा। होना ही चाहिए। एक दिन मैं तुम्हारा हितैषी था, पर आज तुम्हारा दुश्मन हूं। खुली अदालत में मैंने तुमपर अपनी बेटी की हत्या का आरोप लगाया है। मेरी बेटी, जो तुम्हारी पत्नी थी, जो मुझसे अलग हो चुकी थी, जो मेरे लिए गैर थी, उसीका मैंने पक्ष लिया। मैं जानता हूं, यह मेरा अधिकार नहीं था; पर आदमी ठहरा लालची। जो उसका नहीं है, उसीको वह पाना चाहता है। भला मुझे क्या पड़ी थी जो तुम लोगों के बीच में पड़ता ! पुराने बंधन तोड़कर दुनिया नये बनाती आई है। बेटी जब पति को पा जाती है तब पिता से नाता तोड़ लेती है। मैंने उस नाते को फिर से जोड़ना चाहा। वह भी जीते-जी नहीं—बेटी के मर जाने पर, और किसीके झूठ-मूठ बहकाने पर।

क्या कहूं बेटा ! मेरी बुद्धि पर न जाने कैसे पत्थर पड़ गए थे। शीला

तुम्हारी थी । जीते-जी तुम्हारी थी । मरकर भी तुम्हारी रहेगी । मेरा उस पर कोई अधिकार नहीं है । मैंने मुकदमा वापस लेने की अरजी दे दी है । मुझे माफ करना !

भगवान् तुम्हें सुखी रखे ! शीला जहां हो, तुमपर प्रेम की वर्षा करे !”

तुम्हारा
कृष्णगोपाल”

पढ़ चुके तो सहसा कुछ कहते न बना । एक बार फिर पढ़ा । सबने पढ़ा, बार-बार पढ़ा । कई क्षण एक-दूसरे को देखते रहे । गोपाल हतबुद्धि-सा कभी नरेश को देखता जो अब कभी नहीं जाग सकेगा ; कभी बैरिस्टर को देखता जिनके ओठ ऐंठते जा रहे थे । सोचने लगा—कैसा क्रूर है यह क्षण ! कैसी भयानक है पत्र की यह दया-माया !...

सहसा उसे लगा जैसे नरेश के सिर की ओर कृष्णगोपाल की मूर्ति उभर रही है और लाश से चादर हटाकर अट्टहास करते हुए कह रही है, “मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया नरेश, क्षमा कर दिया !”

उस अट्टहास में उसने प्रतिहिंसा का मूर्त रूप देखा । वह विराट् तब जैसे अग्नि-अंबर को घेरकर उमड़-धुमड़ उठा । उसने घबराकर नयन मूंद लिये । उसे लगा, जैसे वह अट्टहास उसे भी निगल जायगा । वकीलसाहब ने कहा, “गोपाल, मैं पुलिस-स्टेशन जा रहा हूं, मेरे साथ चलो !”

वह स्वयं वहां से भाग जाना चाहता था । एकदम कहा, “चलिये ।”

डाक्टर चुपचाप मेज के पास खड़े थे । उन्हें बयान देना था । बैरिस्टर बुधवार इधर-से-उधर, उधर-से-इधर घूम रहे थे । काटते-काटते उनके ओठों से खून बहने लगा था । और बीच-बीच में मुख पर वर्षा-ऋतु की अंधेरी रात के काले बादलों की छाया की तरह विचारों की भयानक छाया चमक उठती थी । वकीलसाहब दरवाजे पर पहुंचे तो उन्होंने सहसा तड़पकर कहा, “मिस्टर चावला !”

चावला ठिठके, “जी !”

“चावला, मैं मारा जाऊंगा । क्यों मेरी दुर्गति कराते हो ?”

और वह रो पड़े । डाक्टर ने आगे बढ़कर उन्हें सम्हाल लिया । खुद उनकी

आंखें भी गीली हो आईं। बैरिस्टर उसी करुण स्वर में कहते रहे, “डाक्टर, मुझपर दया करो ! दया करो, डाक्टर !”

डाक्टर शांत स्वर में बोले, “बुधवार, बात छिपी नहीं रह सकती। कह देने में ही हमारा कल्याण है।”

बैरिस्टर जैसे अकस्मात् रो आये थे, उसी तरह शान्त हो गए। बोले, “ठीक है, ठीक है। जाइये। मैं जानता हूं, यही ठीक है।”

वकीलसाहब ने मार्ग में कहा, “कितना भयानक दृश्य था !”

“आपको डर लगता है ?”

“लगता है।”

गोपाल हँस पड़ा।

“गोपाल !” वकीलसाहब के स्वर में अद्भुत नम्रता थी।

क्षमा मांगते हुए गोपाल ने कहा, “डर मुझे भी लगता है। कभी नहीं सोचा था कि प्रतिहिंसा इतनी भयानक हो सकती है।”

वकीलसाहब ने इस बार जवाब नहीं दिया। गोपाल देखता तो पाता कि उनके मुख का रंग बार-बार श्वेत पड़ जाता है और आंखें रह-रहकर किसी अज्ञात भय से सिहर उठती हैं। कई क्षण दोनों मौन बैठे रहे, फिर सहसा वकीलसाहब ने कहा, “गोपाल ! मैं रतीराम को फांसी के तख्ते पर नहीं चढ़ने दूंगा।...और उसकी भाभी पाकिस्तान नहीं जा सकेगी !... और इस मुकदमे के समाप्त होते ही मैं स्वयं अनीला को ढूंढने के लिए निकलूंगा।...और...”

उसके बाद कुछ नहीं कह सके। तांगा पुलिस-स्टेशन के सामने आकर रुक गया था और द्वार पर छोटे डाक्टर उनकी राह देख रहे थे।

तेईस

प्रभात डिप्टी कलक्टर हो गया। बहुतेरे लोग बधाई देने के बहाने मिलने आने लगे। ललिता भी आई। दूसरे दिन बोली, “मैं तुरन्त लौटने वाली नहीं हूं। ब्याज तक वसूल करके लौटूंगी।”

तब पति से सलाह कर मालती ने मां को पत्र लिखा, “ललिता को कुछ दिन यहींती रखना चाहू हूँ।”

और इस बहाने ललिता वहां रुक गई। इसी बीच प्रभात ने एक दिन सत्येन्द्र को भी साग्रह बुला भेजा और ललिता का पत्र दिखाकर कहा, “आप क्या कहते हैं?”

सत्येन्द्र इस स्थिति के लिए तैयार नहीं था। जानता था कि ललिता उसके प्रति आकर्षित है। अस्पताल में उसने ललिता के भीतर जो नारी है, उसके स्पन्दन को अनुभव किया था। उसके स्पर्श की मादक ऊष्मा से उसे शक्ति मिली थी, पर फिर भी इस आकस्मिकता के कारण वह एकाएक कुछ कह न सका। कई क्षण बाद मुस्कराकर बोला, “इस बारे में अभी कुछ नहीं सोचा।”

प्रभात ने कहा, “सोच लीजिये। ललिता का यही निश्चय है।”

सत्येन्द्र ने सहसा प्रश्न किया, “लेकिन क्या ललिता निश्चय करने को स्वतंत्र है?”

प्रभात ने उत्तर दिया, “इतना ही जानता हूँ कि आप दोनों यदि सहमत हों तो कोई कारण नहीं कि यह विवाह न हो।”

सत्येन्द्र ने अब दृष्टि उठाकर प्रभात की ओर देखा। जाना कि इस व्यक्ति में शक्ति है। उसका मन सुखी हुआ और उसने चाहा कि वह भी उसी स्वर में कह दे—मैं तैयार हूँ।

पर वह कुछ कह न सका। उसके मस्तिष्क में क्षणजीवी स्वप्न की तरह अनेक चित्र उभर आए थे। नववधू ललिता और वर-वेषधारी सत्येन्द्र के चित्र। क्रान्तिकारी विवाह, बधाइयां...तभी उसने सुना प्रभात कह रहा है, “आप क्या सोच रहे हैं?”

“जी!” वह बोल उठा।

प्रभात ने पूछा, “आपको कुछ आपत्ति है?”

“आपत्ति!” उसने क्षण-भर रुककर कहा, “अच्छा दादा, विवाह क्या अनिवार्य है?”

प्रभात मुस्कराया, “यह आप दोनों के निर्णय करने की बात है।”

सत्येन्द्र इस बार फिर पराजित हुआ, परन्तु फिर भी उसने कहा, “दो

प्रेमी एक-दूसरे को चाहते हैं। जबतक चाह है, तबतक वे साथ क्यों न रहें...”

“और जब समाप्त हो जाय तो अलग क्यों न हो जाय ?” प्रभात ने वाक्य पूरा किया और खूब जोर से हँस पड़ा। बोला, “मिस्टर सत्येन्द्र, जिसकी आप बात करते हैं वह चाह सापेक्ष है; और वह जिन तत्वों की अपेक्षा करती है वे एक आयु-विशेष तक सक्रिय रहते हैं।”

सत्येन्द्र अप्रतिभ नहीं हुआ। बोला, “जबतक वे सक्रिय रहते हैं तबतक तो विवाह से छुट्टी मिलनी चाहिए। उसके बाद आवश्यकता हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।”

प्रभात ने अब धीरे पर विश्वस्त स्वर में कहा, “युग-युग के प्रयोगों के बाद जिन लोगों ने धीरे-धीरे इस संस्था का निर्माण किया था, वे निपट मूर्ख नहीं थे, सत्येन्द्र !”

“तो क्या मैं मूर्ख हूँ ?”

“मैं यह नहीं कहता, पर इतना अवश्य कहता हूँ कि विवाह-संस्था को मिटाने के लिए उससे कहीं अधिक साधना करनी होगी, जितनी इसके निर्माण में करनी पड़ी थी।”

सत्येन्द्र फिर सहसा जवाब न दे सका। कई क्षण मौन रहकर बोला, “दादा, मैं जीवन को एक प्रयोगशाला मानता हूँ। कल को क्या मानूंगा, इसकी चिन्ता मुझे नहीं है। मेरे कुछ विचार हैं, कुछ कल्पनाएं मैंने की हैं, उनको जीने का प्रयत्न करूंगा। मुझे आदर्शवादी कह सकते हैं, पर इसी कारण अपने प्रयत्न नहीं छोड़ूंगा। सफल न हुआ तो भी उड़ना मुझसे न छूटेगा। आखिर होमा पक्षी भी तो आकाश में घोंसला बनाकर रहता है !”

प्रभात हँस आया। कहा, “होमा पक्षी को उसका आकाश मुबारिक ! पर सत्येन्द्र, आकाश की गहराइयों में उड़कर भी आदमी की दृष्टि सदा पृथ्वी पर ही रही है।”

और फिर लापरवाही से हाथ फैलाकर बोला, “बेचारा बन्दी !”

सत्येन्द्र ने कुछ जवाब नहीं दिया। प्रभात ने ही कहा, “तो आप ललिता से मिलकर जो निश्चय करें उसकी सूचना मुझे दे दीजियेगा।”

और उसने मालती को पुकारा । मानो सत्येन्द्र को सूचित किया कि अब वह इस बारे में कुछ न कहेगा ।

सत्येन्द्र के हृदय में ललिता की मूर्ति काफी दिन पूर्व प्रतिष्ठित हो चुकी थी । वह जानता था कि यह विवाह आसानी से नहीं हो सकता । इसलिए उसके उर्वर मस्तिष्क ने सभी सम्भावित कल्पनाएं कर डाली थीं । जीवन-भर मित्र रहने की बात तक उस स्वप्नदर्शी ने सोची थी, लेकिन जो कुछ घट रहा था, उसकी कल्पना वह नहीं कर सका था । ललिता को पत्र तक नहीं लिख सका था । शशि की बात सोचकर ललिता ने अवश्य कई बार पत्र लिखा, पर सत्येन्द्र तक पहुंचाने की शक्ति वह भी न पा सकी ।

लेकिन यह तो पार्थिव जगत् की कहानी है । अपार्थिव संसार में वे दोनों एक-दूसरे को निरन्तर प्रेम-पातियाँ लिखते रहे । एक-दूसरे के बिना वे नहीं रह सकते । जैसे इस विपुला पृथ्वी पर उनका और कहीं ठौर नहीं है और कोई अपना नहीं है । सत्येन्द्र के लिए ललिता है, ललिता के लिए सत्येन्द्र । दोनों विकल-विह्वल हो आते हैं । दोनों की प्रगाढ़ अभिन्नता जैसे एकमात्र सत्य हो रहती है ।

मालती और प्रभात उस दिन किसी पार्टी में चले गए थे और शीघ्र लौटने की कोई आशा नहीं थी, इसलिए तीसरे पहर जब नौकर चाय रखकर चला गया, ललिता स्वयं सत्येन्द्र के पास आई । बोली, “चाय पीयेगे ?”

सत्येन्द्र कोई पुस्तक पढ़ने में तन्मय था । दृष्टि उठाई । कहा, “जी क्या ?”

कम्पित स्वर में ललिता बोली, “चाय नहीं पीयेंगे ?”

“आप पीयेंगी ?”

“नहीं ।”

“तो रहने दीजिये ।”

“पी लूंगी ।”

“तो बना लीजिये ।”

ललिता मुस्करा आई । भीतर आलोड़न था । ज्वार के कारण लहरें

आगे ही आगे सरकती आ रही थीं और सांस उत्तेजित होने लगी थी, परन्तु फिर भी वह जी-जान से शान्त रहने का प्रयत्न कर रही थी। इस घोर प्रयत्न के बावजूद उसके 'अमिय-हलाहल-मदभरे नयन' चंचल हो उठे। चाय बनाते-बनाते सहसा दृष्टि मिल गई, मानो ज्वार की बड़ी-सी लहर तीव्र वेग से उसे सराबोर कर गई हो। सत्येन्द्र ने भी सिहरन का अनुभव किया, पर वह तो प्रयोगवादी था न (बीसवीं सदी में कोई बात बिना 'वाद' के नहीं होती) ! ऊपर से हड़ बने रहने का नाटक करता रहा। ललिता ने पूछा, "चीनी कितनी ?"

"तुमको पता है।"

परन्तु जब उसने पहला घूट भरा तो मुख पर मुस्कान खिल आई। बोला, "बहुत प्रसन्न मालूम होती हो। सारा मीठा मेरे लिए सुरक्षित कर दिया।"

ललिता ने चाय का बर्तन उठाते हुए कहा, "लाइये, कम कर दू।"

सत्येन्द्र ने प्याला आगे बढ़ा दिया। बोला, "तो तुम बिना निकाले भी चीनी कम करना जानती हो।"

ललिता चुपचाप प्याले में चाय का पानी डालकर चम्मच से चीनी घोलती रही और न जाने कहां देखती रही। सत्येन्द्र ने पुकारा, "ललिता !"

ललिता कांपी, "जी।"

"चाय नहीं पीओगी ?"

"पीती तो हूँ।" और उसने एक घूट भरा। फिर देर तक दोनों ऊपर से मौन ज्वार में डूबते-उतराते चाय पीने का नाटक करते रहे। सोचते रहे—अब क्या ? अब कैसे ? लालता सुन्दर है, ललिता चतुर है। ललिता साहसी है। सत्येन्द्र कितना आकर्षक है, कितना सौम्य, कितना विद्वान... सहसा सत्येन्द्र ने शान्ति भंग की, "ललिता, मुनो।"

"जी।"

"प्रभात ने मुझसे कुछ कहा था..."

"किस सम्बन्ध में ?"

"आपके सम्बन्ध में..."

ललिता ने एकाएक प्याला मेज पर रख दिया और चाहा कि उठकर भाग जाय, पर इतनी भीग चुकी थी कि अपने स्थान से हिल तक न सकी। शशि उसके सामने आ खड़ी हुई। साहस बटोरकर उसने कहा, “जानती हूँ।”

सत्येन्द्र ठगा-सा देखता रह गया, भीतर का गर्जन जैसे थम-सा गया हो। एक क्षण रुककर बोला, “तो आपका क्या विचार है?”

“जो आपका है।”

“मेरा? मुझे जानती हो...” साँसें फिर उत्तेजित हो आईं।

“किसीको जानने का दम्भ तो नहीं करूंगी, पर जो कहेंगे वह कर सकती हूँ।”

सत्येन्द्र का विस्मय सीमा छूने लगा। कहा, “यह भी क्या दम्भ नहीं है?”

“परीक्षा कर देखिये।”

“जहां जाऊं, जा सकती हो?”

“जी।”

“जंगल, एकान्त, निर्जन?”

“कहीं भी...”

“माता, बहन, किसीसे मिलने को जी नहीं करेगा?”

“पुराने बन्धन तोड़कर नये बना लेना मनुष्य का स्वभाव है।”

सत्येन्द्र को सहसा विश्वास नहीं आया। विस्मित-विमूढ़-सा उसे देखता हुआ कह उठा, “ललिता!” (यानी तुम झूठ बोल रही हो)

ललिता ने शान्त दृढ़ स्वर में कहा, “जी।” (जी नहीं, मैं सत्य कह रही हूँ।)

“तुम आवेश में हो।”

“यह मेरा नहीं, मेरी आयु का दोष हो सकता है।”

“ललिता!” (यानी तुम सीमा से बढ़ गई हो। तुम्हारा इतना साहस!)

“मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ कि यदि विवाह करूंगी तो आपसे करूंगी, नहीं तो...”

“...नहीं तो कुम्भारी रहूंगी।”

सत्येन्द्र सहसा अट्टहास कर उठा, मानो रंगमंच पर नाटक कर रहा हो। वास्तव में वह अपने अविश्वास पर जय पाना चाहता था। उसने कहा, “ललिता, यह एक सुन्दर कहानी है, एक कहानी का सुन्दर प्लॉट है परन्तु ललिता...”

सत्येन्द्र ने सार्श्चर्य देखा, ललिता वहां नहीं है। वह ठिठक गया। कई क्षण मौन खड़ा रहा, फिर ज्ञानी की तरह फुसफुसा उठा, “यह वीर-पूजा है। नहीं, वीर-पूजा से काम नहीं चलेगा।”

और फिर उसने ललिता को ढूँढ़ निकाला। देरतक उसे मन की बातें समझाता रहा, “अपना देश स्वतन्त्र हो चुका है। हम पर उसके निर्माण का भार है। उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा करने का भार है। दासता से मुक्ति पाने के लिए जितने बलिदान तुमने किये थे उससे कहीं अधिक बलिदान हमें अब करने होंगे। हम विदेशियों की निन्दा करते हैं पर वे अपने देश के लिए कितना कुछ करते हैं, यह नहीं जानते। अकेले, निर्जन वनों, वीरान प्रदेशों और अनजान व्यक्तियों के बीच में रहते हैं। परिवार और जीवन की सुविधाओं की चिन्ता तक नहीं करते। उनका एकमात्र लक्ष्य होता है ‘देश’। उसीके लिए अपने सम्पूर्ण को वह खपा देते हैं।”...

ललिता दिल लगाकर सत्येन्द्र की बातें सुन रही थी, परन्तु जैसे ही वह रुका, एकाएक लजाकर दृष्टि नीचे झुका ली। पर यह क्षणिक था। दूसरे ही क्षण मानो शशि ने उसके कन्धे को थपथपाया। बोली, “मैंने भी इस बारे में बहुत सोचा है।”

“स्वप्न में सोचा होगा शायद।”

“स्वप्न तो था ही। परन्तु मैं जागते में स्वप्न देखा करती हूँ। इन्हीं स्वप्नों पर हमारी भावी गृहस्थी टिकी है।”

सत्येन्द्र जोर से हँस पड़ा, इतने जोर से कि ललिता क्षण-भर के लिए अप्रतिभ हो आई। फिर दृष्टि चुराकर सत्येन्द्र को देखना चाहा, पर पकड़ी गई। तब जैसे दोनों के शरीर में चपला प्रवेश कर गई हो। कम्पन शान्त होने में बहुत देर लग गई। फिर सत्येन्द्र ने कहा, “जानती हो कि मैं आई० ए० एस० में बैठा हूँ?”

“जी ।”

“और मैंने सरकार को सूचित कर देने का निश्चय किया है कि आसाम के सीमान्त कबायली प्रदेश में जाने को तैयार हूँ । अंग्रेज दम्पती वर्षों जहाँ रहते, वहाँ केवल वे दोनों ही सम्य संसार के प्राणी होते । पर न कभी ऊबते, न शिकायत करते; लेकिन एक हम हैं कि गांव तक में जाते प्राण सूखते हैं, क्योंकि न है वहाँ जुआघर, न है शराबवाली सोसायटी, होटल, सिनेमा नहीं, मित्रों की पत्नियाँ तक नहीं । हम देश-सेवा की डींग हाँकते हैं, पर करते हैं अपनी सेवा । और आज इस अभागे देश को जरूरत है उनकी, जो दूसरों की सेवा में विश्वास करते हैं ।”

ललिता धीरे से बोली, “दूसरों की सेवा का दावा क्या निरा दम्भ नहीं है ?”

सत्येन्द्र इस प्रश्न के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था । एक क्षण के लिए मौन हो रहा । उस क्षण ललिता ने जी भर कर उसे देखा । फिर सहसा गहरा निःश्वास मुख से निकल गया, इतने जोर से कि वह स्वयं लज्जा से कांप उठी । सत्येन्द्र का ध्यान उस ओर नहीं था । एक क्षण बाद दार्शनिक-सा वह बोला, “यह तो किसी प्रश्न को देखने के दृष्टिकोण की बात है । दम्भ बिना किये भी काम हो सकते हैं । मूल बात केवल यही है कि व्यक्ति अपने को महत्व न दे ।”

ललिता एकाएक कह उठी, “अर्थात् काम को महत्व दे ?”

“हां, यदि कोई ऐसा कर सके तो फिर दम्भ कहीं नहीं रहता ।”

ललिता ने मानो स्वीकृति में गर्दन हिलाई । बोली, “समझती हूँ, बात अकिंचन बनने की है ।”

सत्येन्द्र जैसे गद्गद हो उठा, “यही, यही शब्द तो मैं बहुत देर से खोज रहा था । तुमने खोज लिया, यानी तुम इसका अर्थ समझती हो ।”

ललिता अचानक उतावली हो उठी । कुछ कहना चाहा, पर कह न सकी । कई क्षण मौन बैठी सोचती रही, फिर सहसा सत्येन्द्र को जैसे कुछ याद हो आया । बोला, “मुनो ललिता, अभी एक डेन यात्री से मिलना हुआ । पंद्रह वर्ष से वह एशिया महाद्वीप में घूम रहा है । एक चीनी लड़की से शादी करली है । दोनों ज्ञान की खोज में आज यहाँ, तो कल वहाँ; पर कितने

स्वस्थ, कितने प्रसन्न, धूमते हैं और कमाते हैं ! कार भी उनके पास है । उनकी पार्थिव दुनिया जैसे उसी कार में सिमट आई है ।”

ललिता ने एकाएक कहा, “हम भी ऐसा कर सकते हैं।”

“हम !”

“जी हां, आप और मैं ।”

“ललिता...”

“...”

“ललिता, तुमने निश्चय कर लिया है ?”

“...”

“लेकिन यदि तुम्हें पता लगे कि मैं किसी और से शादी करना चाहता हूँ तो...”

ललिता ने सहसा तीव्र गति से कांपकर पूछा, “क्या सचमुच ऐसा है ?”

“मान लो, ऐसा हो ?”

“मान लो नहीं, यदि आप सचमुच किसी और से प्रेम करते हैं तो मैं आपकी राह का रोड़ा न बनूंगी ।” (ललिता रो आई ।)

“दुख न होगा ?”

“आपको उससे कुछ लेना-देना नहीं है । केवल मुझे बता देना है । अभी इसी समय...” (ललिता अब सिसकी, अब सिसकी)

“ललिता, यह आवेश है ।”

ललिता ने सिर झुका लिया । समुद्र में ज्वार उफान पर था । स्थिर होने में युग बीत गए । हो पाई तो थकी-सी बोली, “ठीक कहते हैं, मुझे उत्तेजित होने का अधिकार नहीं है ।”

और वह उठकर चलने लगी । हृदय में ज्वार उसी तरह उठ रहा था । नयनों की पुतलियां उतर आई थीं और शरीर में उन्माद जैसे फूटने की राह देख रहा था । सत्येन्द्र मृदु स्वर में बोला; “एक मिनट ठहरो, ललिता ।”

ललिता ठिठक गई ।

“पूरी बात तो तुमने सुनी नहीं । मैं किसी से प्रेम नहीं करता, केवल

तुमसे...केवल तुमसे प्रेम करता हूँ। पर ललिता...पर...”

अद्भुत दृश्य था। ललिता तन्मय, विमृग्ध उसे देखती ठिठकी खड़ी थी और सत्येन्द्र शब्दों के लिए छटपटा रहा था। अन्तर की उन्माद-भरी लहरें मिलन की सीमा पर आकर मानो पुकार रही थीं, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता...नहीं रह सकता...

इन्हीं अलौकिक क्षणों में दो हृदय सदा के लिए एक हो गए। देर तक वे उसी एकत्व को अनुभव करते हुए समाधिस्थ हो रहे। फिर सहसा अपने को वर्तमान से तोड़ना हुआ सत्येन्द्र गम्भीर स्वर में बोला, “नहीं ललिता, आज नहीं, छः माह बाद बातें करेंगे।”

ललिता के गीले नयन प्रेमिल प्रकाश में दीप्त थे। मुख पर प्रेम-रक्त उबल आया था। बोली, “छः माह नहीं, छः युग के बाद भी मेरा यही निश्चय रहेगा।”

ठीक इसी समय मालती के साथ प्रभात ने वहाँ प्रवेश किया। ललिता तब अपनी बात कहकर जाने को मुड़ी ही थी कि सहसा जीजी को देख कर हतप्रभ रह गई। सौंदर्य और भी निखर आया। प्रभात मुस्कराकर बोला, “तो छः माह तक और तपस्या करनी पड़ेगी? बाप रे! ये पुरुष भी कितने निष्ठुर होते हैं।”

ललिता ने चंचल होकर कहा, “हटो भी जीजाजी, मैं क्यों करती तपस्या?” और वह द्रुत गति से वहाँ से चली गई। मालती ने सत्येन्द्र से पूछा, “कहिये श्रीमान्, खाना-पीना हुआ?”

सत्येन्द्र ने सहज स्वर में उत्तर दिया, “यह तो नहीं कह सकता, परन्तु इतना जानता हूँ कि मैं पूर्ण तृप्त हूँ।”

तब पति-पत्नी बड़े जोर से हँस पड़े।

सत्येन्द्र ने कहा, “इसमें हँसने की क्या बात है?”

प्रभात ने उत्तर दिया, “आज नहीं, छः महीने बाद पूछियेगा।”

और वे फिर जोर से हँस पड़े। इस बार सत्येन्द्र ने भी साथ दिया। बाहर ठहरी हुई ललिता भी हँसी न रोक सकी। लेकिन कोई देखता तो उस समय उसके नयनों में एक अद्भुत अवर्णनीय प्रेमिल ज्योति फूटी पड़ रही थी।

चौबीस

सत्येन्द्र का पत्र ललिता के नाम—

प्रिय ललि,

इतने समय तुमसे दूर ही हटना रहा। मिलने के अनेक अवसर जान-बूझकर खो दिये। कई बार तो देहरी तक पहुँच चुका था। यह घोर प्रयत्न मेरी मानसिक स्थिति की अव्यवस्था का प्रतीक माना जा सकता है, पर जो है उसे झुठलाऊँ क्यों? लज्जित भी क्यों होऊँ? मुझे सब स्वप्नदर्शी कहते हैं। स्वप्न मैं देखता हूँ, पर वे कभी अस्त-व्यस्त नहीं होते। जाग्रत जीवन से अधिक व्यवस्था उनमें होती है। स्वीकार करूँगा, मेरे आदर्श आकाश की छूते हैं, पर यह भी उतना ही सत्य है कि उनके पैर सदा धरती पर रहते हैं। मैं यह कभी नहीं भूलता कि मेरी धरती भी एक सुन्दर नक्षत्र है। आरम्भ में सब आदर्श अव्यावहारिक दिखाई देते हैं, पर अविरल प्रयत्न और मूक साधना की शक्ति उनके पीछे हो तो वे सहज व्यावहारिक हो रहते हैं। विज्ञान की नाना खोजें, जो एक दिन कल्पनातीत थीं, क्या वे ही आज सहज सुलभ नहीं हैं? चन्द्रलोक की यात्रा क्या आज कवि-कल्पना की परिधि को पार करके वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में नहीं पहुँच गई है? क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि मैं बहते जल में बालू फेंककर पुल बांधने का प्रयत्न करना नहीं चाहता?"

ललि, तुमसे छिपाने को मेरे पास अब कुछ भी शेष नहीं है। विवाह हो या न हो, अस्पताल के उन दिनों से निरन्तर मुझे ऐसा लगता रहा है कि तुम सदा...सदा मेरे पास रही हो और रहोगी भी। यह जो इतने प्रेम-विवाह आजकल होते हैं, उनमें प्रेम नाम की कोई वस्तु नहीं होती। होती है केवल यौन-लालसा। इसी लालसा से आक्रान्त प्रेमी युगल एक-दूसरे की प्रशंसा करते हैं। यह वीर-पूजा है, प्रेमी की ऊष्मा नहीं। इसी-लिए ये विवाह शीघ्र ही रूढ़िवादी विवाहों से भी गए-बीते हो रहते हैं।

पर ललि, जो विच्छेद आजकल होने लगे हैं, वे भी अवसर होते हैं। यदि जीवन के कुछ क्षणों को, जो विवाह करने के समय के उन्माद के क्षणों की तरह होते हैं, टाल देना सम्भव हो तो विच्छेद की बेला भी टल

सकती है। एक मित्र की कहानी जानता हूं, उन्होंने प्रेम-विवाह किया था। दोनों सुन्दर थे। उद्दाम यौवन से भरा उनका जीवन बहुत दिनों तक प्रेम की तरंगों पर बहता रहा था। पर एक दिन आया कि उन्माद अपनी नवीनता खो बैठा। वे दो पुत्रों के रक्षक बन गए। तब सहसा मित्र घर से दूर हटने लगे, नये मित्रों की टोह में। अभी सुन्दर थे, यौवन में भी आकर्षण था, इसलिए नये मित्रों में स्त्रियां अधिक थीं, आधुनिक सौन्दर्य और फैशन की प्रतिमाएं। मित्र उनके हो रहे। पत्नी ने सबकुछ देखा, पर वह मौन रही। पति के सुख में बाधा देना उसने नहीं चाहा, पर उसका अपना सुख भी तो लुटा जा रहा है। उसे खोकर वह कंगाल बनने लगी है। धीरे-धीरे झुर-झुर कर बीमार पड़ जाती है, बहुत बीमार, जीवन से निराश। जब वह मृत्यु के पास पहुंचती है, तो एकाएक उसे ध्यान आता है कि आखिर वह क्यों मर रही है, इसमें उसका क्या दोष है? तब वह निश्चय करती है, “नहीं... नहीं... मैं नहीं मरूंगी। मैं विरोध करूंगी, संघर्ष करूंगी।”

और उसने यही किया। सन्ध्या को जब पति घर लौटे तो अपने पास बैठाकर उसने अपनी समस्त अन्तर-व्यथा उनपर प्रकट कर दी। उनकी प्रेमिकाओं के नाम, मिलने के स्थान, यहां तक कि तिथियां भी बता दीं। आवेश में आकर उन्हें लांछित तक किया। परन्तु पति आखिर पुरुष ही तो है। अनेक बहाने उसने बताये, स्वीकार कुछ नहीं किया। खाई और भी बढ़ गई। मित्र बीच में आये, पर समझौता न हो सका...

फिर दिन बीतने लगे। पति होटल में रहते और पत्नी घर में। शरीर से वह स्वस्थ होती आ रही थी, पर मन में कभी-कभी ऐसा कुछ होने लगता था, जिसे वह समझ नहीं पाती थी। बस, अनमनी हो उठती थी। इसी अवस्था में एक दिन उसे पति का पत्र मिला। लिखा था—“क्या तुम मुझे एक बार बच्चों से मिला सकती हो? शाम को पांच बजे लारेंस गार्डन में मिलूंगा। एक बार मेरी इतनी बात और मान लो। बस, एक बार।”

उसके अस्वस्थ मन में कई विचार उमड़-धुमड़ आए। उसने निश्चय किया, “नहीं, मैं बच्चों को लेकर पास नहीं जाऊंगी।” लेकिन जो कुछ

हुआ वह यह था कि ठीक पांच बजे वह बच्चों को लेकर लारेंस गार्डन में पहुंच गई...और उसके बाद ललि, तुम नारी हो, कल्पना कर सकती हो कि क्या हुआ होगा ।...आज वे दोनों पति-पत्नी बहुत सुखी हैं, बहुत सन्तुष्ट ।

मैं बहुत दूर चला गया । सोचते-सोचते बहुधा दूर चला जाता हूं, पर बुद्धि का तिरस्कार नहीं कर पाता । कभी-कभी लगता है, जैसे ज्ञान बढ़ गया है, पर बुद्धि वहीं है । आजकल ऐसा ही तो होता है । पर मैं बिना बुद्धि के जीवन की कल्पना नहीं कर सकता । तुम मेरी बुद्धि हो, ललि !...

जाने दो, यह भी आवेश है और मैं आवेश के क्षणों से बचना चाहता हूं । भावुकता अनिवार्य होकर भी शक्ति नहीं है । मैं प्रयोग करना चाहता हूं । तुम्हारी कठिनाइयां मेरे सामने हैं, इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि हम पुरानी रीति का परित्याग करके नई रीति से विवाह करें । निश्चय करें कि यह विवाह केवल पांच वर्ष के लिए है । पांच वर्ष बाद नये सिरे से उसपर विचार करें । उसके बाद भी साथ रहना उचित समझें तो अवधि बढ़ा दें ।

यह हम लोगों की व्यक्तिगत बात है । समाज को अभी इसमें नहीं लाना चाहता । तुम्हारी प्रतिक्रिया की उत्सुकतापूर्वक राह देखूंगा ।

तुम्हारा—
सत्येन्द्र

ललिता का पत्र सत्येन्द्र के नाम—

प्रिय...

पत्र अभी-अभी मिला । जो इतना जानता है उसे और क्या विचार दूँ ! पर एक बात पूछती हूँ कि ज्ञान क्या अपने-आप में इतनी अच्छी चीज है कि उसके लिए कागज और स्याही को खर्च किया जाय ? समय की सीमा और कागज की लिखावट, मन मिलाने के लिए इनका उपयोग कोई बहुत अच्छी बात नहीं है । पर बुद्धि तो प्रयोग की आत्मजा है, इसलिए मुझे आपके प्रस्ताव पर कोई आपत्ति नहीं है ।

आपकी—
ललिता

रामनाथ का पत्र प्रभात के नाम—

प्रभात,

अभी जो कुछ सुना उसका पहला असर मुझपर यह हुआ कि नरेश की तरह जहर खाकर सो जाऊं। अच्छा बदला लिया। जज जो बने हो! फैसले करते हो। देख आया हूं, लोग तुम्हारे पैरों पर लौटते हैं। इसीलिए हर किसीको मातहत समझते हो। तुम्हें क्या हक था कि इस तरह किसी की बेटी को बहकाकर ऐरे-गैरे से शादी कर देते। अपने रिश्ते की आड़ लेकर तुमने एक शरीफ खानदान की आबरू धूल में मिला दी। गरीब मां-बाप की बाकी जिन्दगी में कांटे बो दिये। तुमने मेरी फूल-सी कोमल, बच्ची-सी भोली ललिता को बहकाकर नीच कुल के उस सत्येन्द्र के साथ कर दिया।

तुम समझते हो कि इस खून की घूंट को मैं इसी तरह पी जाऊंगा, बोलूंगा नहीं। नहीं प्रभात, तुम्हें यों ही नहीं छोड़ूंगा। अदालत के कटघरे में खड़ा करूंगा। तुम्हारे हाथों में हथकड़ी डलवाऊंगा।

मैं तुम्हें जान से मार डालता, पर क्या करूं, तुम्हारी वह नापाक जान मेरी बेटी का सुहाग है। वह लाली मेरी राह में चट्टान बनकर अड़ गई है। फिर भी बख्शूंगा नहीं। चोट खाकर किसने किसको माफ किया है? मैं भी तुम्हें चैन से नहीं सोने दूंगा।

—रामनाथ

पत्र की पीठ पर फिर लिखा था :

“बेटा,

इस पत्र पर जिस रामनाथ के दस्तखत हैं, वह मैं नहीं हूं। वैसे उसे मैं जानता हूं। बेचारा जात-बिरादरी के शिकंजे में कसा हुआ एक बेबस पंछी है। मुझे उसपर दया आती है। खूब किया बेटा! जन्म-जन्म आशीर्वाद दूंगा। खूब उबारा! नहीं जानता था कि मालती का पिता बनना मेरे लिए इतना बड़ा सौभाग्य होगा। जियो, शान से जियो। तुम सबको बहुत-बहुत प्यार!

तुम्हारा पिता
रामनाथ”

सुनील का पत्र प्रभात के नाम—

“प्यारे प्रभात,

कमाल कर दिया मेरे शेर ! रस्क होता है । विवाह को तुमने विवाह समझा । आवरण को छेदकर आत्मा को अनावरण करने में तुमने पहल की है, तुम्हें चूमने को जी करता है । बुरा न मानना, पैर छूने में दूरी है । यह सामंती पद्धति मुझे पमंद नहीं है । तुमने जिस रीति-नीति को अलविदा कहा है, वे भी सामंती युग के फैशन की यादगारें हैं ।

सत्येन्द्र और ललिता के विवाह के इस ऐतिहासिक अवसर पर न आ सका । शशि ने मुझे सबकुछ लिखा है । सत्येन्द्र का पत्र भी मुझे मिला है । मुझे उसके आदर्शवाद से इतना डर नहीं, जितनी उसके साहस पर खुशी है । वह शरमीला तो गजब का साहसी निकला ।

वह आई० ए० एस० में आ गया है और देश के वीरान प्रदेशों में जाकर उपेक्षित मानवता की सेवा करने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया है । मैं जानता हूं, वह सफल होगा ।

शशि कहती थी कि तुमने ललिता के मा-बाप को सूचना तब दी जब इतिहास लिखा जा चुका था । बड़े बौखलाये होंगे । पर क्या करेंगे, सिर पीटकर रह जायेंगे । काश कि उनके सिर पीटने के साथ पुरानी रूढ़ियां भी सिर पीट लें !

लेकिन प्रभात, यह तो हुआ । नीलम के बारे में क्या सोचा ? ज्ञान उसका भी बढ़ रहा है । अनुभूति ने उसके ज्ञान की धार को तेज कर दिया है, पर दुःख इस बात का है कि वह ज्ञान उसीके अंतरको काट रहा है । कलाकार जिस अनुभूति के बल पर पत्थर को मोम करके उसमें अपनी भावना को रूप देता है, वही अनुभूति नीलम को पत्थर बना रही है । गोपाल ऊपर से जितना संयत, मधुर और मुखरित लगता है, भीतर से उतना ही त्रस्त है । उसकी कहानी सुना चुका हूं । ललिता के विवाह के तुरंत बाद वह पाकिस्तान चला गया है । वहां उसके अनेक मित्र हैं । तुम्हें शायद मालूम नहीं, नीलम के अपहरण के समय उसके कलकत्ते जाने की बात गलत थी । वह तब रावलपिंडी में था और उसका नाम था शफीक ।

तुम चौंक उठे होगे, पर मैं जानता हूं कि वह अनीला को खोजने के

लिए कुछ भी कर सकता है। वेश बदलने में वह सिद्धहस्त है। अनेक प्रांतों की भाषा वह बड़ी सरलता से बोल लेता है। नीलम के लिए वह मनहार बना। डाकुओं के डेरे में डाकू बनकर गया और उसे खोज लाया। नीलम सबकुछ जानती है और यह भी जानती है कि वह गोपाल से प्रेम करती है। लेकिन प्रभात, रतिराम के प्रति भी उसका आकर्षण है। उसे प्रेम कहा जा सकता है, यह मैं नहीं मानता, पर वह चाहती है कि रतिराम को सजा न हो, उसकी भाभी पाकिस्तान न जाय।... मानव-हृदय भी अद्भुत है, लेकिन जो हो, नीलम को उस आकर्षण की दलदल से निकालना होगा। वह मुकदमा जल्दी होना चाहिए। तुम कुछ कर सकते हो, तो करो।

मैं ठीक हूँ। देश आज रोटी मांग रहा है और मैं साहित्य का सृजन कर रहा हूँ। गांधी महात्मा ने एक बार रवि ठाकुर को लिखा था, 'भारत के विस्तृत आकाश के नीचे मानव-पक्षी रात को सोने का ढोंग करता है, भूखे पेट उसे जरा भी नींद नहीं आती और जब वह सुबह बिस्तर से उठता है तब उसकी शक्ति पिछली रात से कम हो जाती है। लाखों मानव-पक्षियों को रात-भर भूख-प्यास से पीड़ित रहकर जागरण करना पड़ता है अथवा जाग्रत सपनों में उलझे रहना पड़ता है। यह अपने-अपने अनुभव की, अपनी समझ की, अपनी आंखों-देखी अकथ दुःखपूर्ण अवस्था और कहानी है। कबीर के गीतों से इस पीड़ित मानवता को सान्त्वना दे सकना असम्भव है। यह लक्षावधि भूखी मानवता हाथ फैलाकर, जीवन के पंख फड़फड़ा कर, कराह कर, केवल एक कविता मांगती है—पौष्टिक भोजन।

आज भी वह मांग उसी तरह स्थिर है।

कहां-से-कहां पहुंच गया। स्वतन्त्रता का प्रभात सदा इसी तरह पीड़ा देता है। यह हम पर निर्भर है कि इस पीड़ा को प्यार का रूप दे सकें। मैं उसी प्यार में विश्वास करता हूँ। उसे आते देख रहा हूँ। हम उसको लाकर रहेंगे। हम, तुम, लाखों करोड़ों, शशि, नीलम, सत्येन्द्र, प्रभात, सुनील, गोपाल, मालती और ललिताएं।

नीलम पास हो गई है। वेतन भी बढ़ गया है। आकाशवाणी पर

शीघ्र ही स्थान मिलने की आशा है। उसे पढ़ाने में रुचि है, परन्तु मुझे यह बुजुर्गी पसन्द नहीं। अभी उसकी पढ़ने की आयु है।

पत्र की राह देखूंगा।

स्नेही,
सुनील

पच्चीस

मां मुस्कराती हुई अन्दर आई।

नीलम तभी आकाशवाणी से लौटी थी। मां को मुस्कराते देखकर बोली, “बहुत खुश हो मां। क्या हुआ?”

“तुमने नहीं सुना? रतिराम को पन्द्रह वर्ष की सख्त सजा हुई है।”

“क्या?” नीलम सिहरकर ठगी-सी देखती रह गई।

मां ने उत्फुल्ल-मन कहा, “हां बेटी, सुनील अभी आया है। रतिराम पर हत्या का आरोप सिद्ध नहीं हो सका, परन्तु डाका डालने और अपहरण के अपराध में उसे यह सजा हुई है।”

“हो गई?” अविश्वास से नीलम ने पूछा।

“हां।”

“उसकी भाभी का क्या हुआ?”

“वह पाकिस्तान जायगी।”

नीलम मौन हो गई, जैसे खड़ी थी, खड़ी रही। मां ने फिर कहा, “नाशपीटे को फांसी लगती तो मुझे और भी खुशी होती।”

“मां!” नीलम एकदम बोली।

“क्यों, क्या बात है?” मां ने चकित होकर पहली बार उसकी ओर देखा।

नीलम धीरे से, पर दृढ़ स्वर में बोली, “तुम मां हो, उसकी भी मां है। ऐसी बात मत कहो मां।”

मां ने कहा, “मां तो सभीके होती हैं।”

“हां, और सभी मांओं को दुःख होता है।”

मां ने तलखी से कहा, “जिनके बेटे डाकू और हत्यारे होते हैं, उन मांओं को दुःख उठाना ही होगा।”

नीलम सहसा कुछ जवाब न दे पाई, अन्दर चली गई। उसे तब उस युवक की कहानी याद आ गई थी, जिसने अपने मां-बाप को मार डाला था, फिर जज से गिड़गिड़ाकर कहा था कि क्योंकि वह अनाथ है, इसलिए उसे क्षमा कर दिया जाय। मन-ही-मन उसने कहा, “ठीक है, उस पन्द्रह वर्ष की सजा नहीं, फांसी होनी चाहिए थी। ऐसे लोग समाज के शत्रु हैं, घोर शत्रु। उनका नाश होना ही चाहिए।”

कुछ ही क्षणों में वह काफी थकी हुई और उखड़ी-उखड़ी लगने लगी। मां ने अनुभव किया कि उसे अभी इस बात की चर्चा नहीं करनी चाहिए थी। फिर भी उस यह आशा नहीं थी कि नीलम शत्रु से सहानुभूति प्रकट करेगी। वह पहले जैसी लजीली नीलम नहीं रही है। न है उसमें पहली जैसी कदर्य नम्रता, न है दीनता। इस घटना के कारण वह कभी-कभी बहुत त्रस्त हो जाती है। परन्तु दूसरे ही क्षण उतनी ही उदण्ड भीम मुक्त होकर हँसती है, निर्द्वन्द्व हांकर काम करती है।...कभी-कभी मां उसके इस परिवर्तन पर भयातुर हो आती है, पर दूसरे ही क्षण समझ लेती है कि यह नीलम का नहीं, उसकी आयु का दोष है। उसकी शादी हो जानी चाहिए।

लेकिन यहीं वह बिल्कुल अपंग है। सत्येन्द्र से कहती है तो वह जवाब दे देता है, “मां, नीलम के विवाह की चिन्ता हमें-तुम्हें नहीं करनी है।”

मां अविश्वास से पूछती है, “तो किसे करनी है?”

सत्येन्द्र सहज भाव से कह देता है, “नीलम को।”

मां हँस पड़ती है, “पगला। वह क्या करेगी? वह तो...”

“वह अब सबकुछ समझती है, मां। बस, थोड़ा-सा और पढ़ लेने दो।”

विवाह के बाद जब वह आसाम जाने लगा तो उसने नीलम से कहा था, “देख नीलम, मां को तग मत करना!”

नीलम हँस पड़ी थी, “तो क्या करूँ ?”

“विवाह कर लेना ।”

“यानी मैं भी मां को छोड़कर चली जाऊँ ? देखा मां, भैया तुम्हको कितना प्यार करते हैं !”

मां ने कहा था, “प्यार करता है तभी तो ऐसा कहता है । मुझे छोड़कर चले जाने में ही तेरा और मेरा कल्याण है ।”

मां को अपनी सन्तान पर गर्व था, पर वह उसे समझ नहीं पाती थी । उसके काम उसकी बुद्धि के पैमाने से परे थे, इसलिए वह प्रायः मौन हो रहती । आज भी मौन हो रही । पर रह-रहकर एक विचार उसके मन को कुरेदने लगा, “नीलम को उन लोगों से सहानुभूति क्यों है ?”

नीलम भी यही सोचती है, “मुझे उन लोगों से सहानुभूति क्यों है ! वे समाज के शत्रु, डाकू, हत्यारे...”

सहसा बहुत धीरे से किसी ने उसके कर्ण-रन्ध्र में फुसफुसाकर कहा, “उसकी बूढ़ी मां है, वह कितनी त्रस्त है ! बेटे के कामों से उसे कितनी नफरत है !”

वह तेजी से बोल उठी, “नफरत है तो अलग क्यों नहीं हो जाती ?”

“क्योंकि वह मां है ।”

“है तो उसके साथ दण्ड भी भोगे !”

फिर जैसे अपनी इस अप्रत्याशित निष्ठुरता पर स्वयं ही अप्रतिहत हो आई, जैसे अस्फुट स्वर में स्वयं से ही कहती हो, “हां, मां है तो बेटे के साथ दण्ड भोगे । इसमें रोने की क्या बात है ! प्रेम करके उसके परिणाम से कैसे बचा जा सकता है !”

अन्तर का स्वर मौन नहीं हुआ, उत्तेजित भी नहीं हुआ । बोला, “प्रेम की बात कहती हो, प्रेम तो तुमसे रतिराम भी करने लगा था ।”

इस बार नीलम एकबारगी कांप उठी । चीखकर बोली, “पर मैं उससे नफरत करती हूँ । मैं उसे...मैं उसे...ओह...!”

जैसे कोई अट्टहास कर उठा, “पगली लड़की, नफरत और प्रेम दोनों का एक ही अर्थ है ।”

“नहीं, नहीं, नहीं !”

“तीव्र इन्कार के मूल में स्वीकृति ही तो है ।”

नीलम तिलमिला आई । माथे पर पसीने की बूँदें चमकने लगीं, “यह कैसा तर्क का मायाजाल है ? क्यों वह इतना सोचती है ? क्यों वे सब उसे याद आते हैं ? वह घटना एक बुरे सपने की तरह उसके जीवन में आई, पर अब जब वह जाग चुकी है तब उसकी याद उसे क्यों सताती है ? मान लो, रतिराम छूट भी जाता तो क्या वह उससे विवाह कर सकती ?...

“नहीं-नहीं,” वह नफरत से हिल-हिल उठी, “नहीं, वह ऐसा नहीं कर सकती । वह ऐसा सोच ही कैसे सकी ? वहां तो एक और व्यक्ति पहले ही आ बैठा है ।”

उसी रात उसने गोपाल को लिखा—

“श्रद्धेय,

मेरे छोटे-से जीवन में इतने परिवर्तन हुए हैं कि अचरज होता है । अनजान के इन प्रयोगों ने मुझे अब त्रस्त कर दिया है । कभी-कभी बड़ा डर लगता है । ऊपर से जितनी शान्त और दृढ़ दिखाई देती हूं, उतनी ही वास्तव में अशांत हूं । छाती के भीतर जो हलचल है, वह भूचाल के भटकोलों-सी मुझे डुलाती रहती है । चाहती हूं, उसका अन्त हो ।

एक दिन के लिए ही सही, इधर आ सकोगे क्या ? बार-बार के सहारे ने मुझे कितना पंगु बना दिया है, कैसे बताऊं ? आप पर मुझे विश्वास जो है ।

मां अक्सर आपकी याद करती हैं ।

आपकी”

पुनश्च करके लिखा—

“मुकदमे का फैसला हो गया । पन्द्रह वर्ष रतिराम जेल में रहेगा । ठीक है, पर क्या जेल की दीवारें उसे और उसके विश्वासों को और भी दृढ़ न करेंगी ? क्या न्याय का यह अमानवीय रूप ही सही है ?

उसकी भाभी पाकिस्तान चली जायगी । दो देशों की राजनीति के इस संघर्ष में नारी को कितना बलिदान करना पड़ा, क्या कोई इतिहास-कार इसकी कल्पना कर सकेगा ?”

फिर लिखा—

“आप दिल्ली में रहनेवाले थे । क्या हुआ ? भैया के चले जाने पर हमारे पास काफी जगह बच गई है । आपको कोई असुविधा नहीं होगी । आ जाइये ।

आपकी अपनी,
नीलम”

पत्र जब बन्द करने लगी तो सहसा ‘अपनी’ शब्द पर दृष्टि अटक गई । सिहर उठी, कलम उठाकर काटना चाहा, पर न जाने क्या हुआ, पत्र बन्द करके जहां खोलने का स्थान होता है वहां टिकट लगाये और तकिए के नीचे रखकर सो गई ।

उस रात नीलम ने एक स्वप्न देखा :

न जाने कहां-कहां भटकती-भ्रमती वह अचानक एक भयंकर वन-प्रांतर में जा निकली है । उन प्रांत में मति-मानस का नाम नहीं, केवल कुछ हृदय-द्रावक चीत्कार सुन पड़ रहे हैं । कुछ क्षण बाद एक ओर से भयंकर आग लगती हुई आती है और उस आग में से उभरते हैं कुछ मानव-मुख, झुलसे हुए और दयनीय । वह कांपती है और भागना चाहती है, पर वे मुख उसका पीछा करते हैं । वह मुड़ती है, दौड़ती हुई आग की लपटों की ओर बढ़ती है...

तभी कोई पुकारता है, वह ठिठकती है, पर कोई दिखाई नहीं देता । दृष्टि फिर आग की ओर जाती है, पर अब पैर उधर नहीं बढ़ते । वह पुकार फिर सुनती है, पर पुकारनेवाला तो कहीं नहीं है । उसके स्थान पर दूसरी ओर से आकाश को छूनेवाली पूर्णिमा के ज्वार जैसी विक्रान्त लहरें उसे निगलने को आगे बढ़ती हैं ।

वह भय से जड़ बन जाती है । जल और अग्नि के बीच उसे कोई मार्ग नहीं दिखाई देता, पर कहीं दूर से आती हुई वह अज्ञात पुकार अब भी उठती है । लपटें पास आ जाती है, उसका एक पार्श्व तपने लगता है । लहरें उछल-उछलकर उसके दूसरे पार्श्व को गीला करने लगती हैं । वह चीखकर उनके बीच में से भागती है, पुकार के आदेश पर भागती चली जाती है; पर जितना आगे बढ़ती है, लहरें और लपटें एक-दूसरे से उल-

भने को पास आती हैं, वे उलझ पड़ती हैं। एक भीषण विस्फोट होता है। नीलम चीखकर गिर पड़ती है, पर उसी क्षण वह देखती है कि वह उस बवंडर से दूर आ चुकी है और वह चिर-परिचित पुकार मधुर स्वर में कह रही है, “नीलम, कहीं कुछ नहीं है, तुम यों ही डर रही हो। नीलम, आंखें खोलो...”

नीलम ने आंखें खोलیں। अविश्वास से देखा—मां उसके ऊपर झुकी हुई सान्त्वना दे रही है।

“डर गई, बेटी। सपना देख रही थी?”

“सपना!”

“कोई डरावना सपना होगा। तू कई बार चीखी। कई बार कहा कि छाती पर हाथ रखकर नहीं सोया करते, पर तू सुने तब न!” मां ने सिर हिलाते हुए कहा।

नीलम सम्हली और परिस्थिति को समझा।

“क्या सपना था, बेटी?” मां ने पूछा।

“आग और पानी।” वह एकाएक कह गई। फिर एक निःश्वास उसके मुंह से निकल गया।

“आग और पानी!” मां ने दोहराया। उसकी कुछ समझ में नहीं आया। तभी सहसा नीलम को याद आ गया कि सपने देखनेवाले कायर होते हैं। उसने मां से कहा, “सो जाओ, मां। ऐसे ही डर गई थी। अब छाती पर हाथ नहीं रखूंगी।”

पर मां उस रात नहीं सो सकी। आग और पानी के अर्थ खोजती रही।

छब्बीस

भाभी के पाकिस्तान जाने से पूर्व नीलम उससे मिलने गई। पाया—न है पीला निस्तेज मुख, न है आरक्त सूजे नयन, न है कांपता शरीर और न है अस्त-व्यस्त वस्त्र। शांत मुख-मुद्रा, शोक का चिह्न तक नहीं। नयनों

में रची है हलकी-सी तरल मुस्कान। नीलम ने कांपते हुए कहा, “जीजी... ई...ई...”

जीजी ने ललककर नीलम को छाती में भर लिया। बोली नहीं, पर नीलम तुरंत जान गई कि जीजी मुबकने लगी है। वह स्वयं भी रो पड़ी। कई क्षण बाद जीजी अपनेको सम्हाल, बोली, “जानती थी कि तुम आश्रमोगी। वह नजारा कभी नहीं भूल सकती, जब तुमने मुझे पहचानने से इंकार कर दिया था।”

नीलम ने बात टालने के लिए पूछा, “जा रही हो?”

“जा नहीं रही, ले जाई जा रही हूं।”

“हम इतनी बेबस हैं!”

इस बार जीजी ने कहा, “इन बातों की चर्चा छोड़ो। मैं मुसलमान हूं, मुझे जाना पड़ेगा।”

“लेकिन...”

“यह दो मुल्कों का समझौता है, नीलम।”

नीलम ने तलखी से कहा, “मुल्क के लिए शायद इंसान कुछ नहीं है। दो मिले हुए दिलों को तोड़ना शायद उस समझौते की शर्त है।”

जीजी कुछ मुस्कराई, जैसे दुपट्टा मुंह में देकर हँस पड़ेगी, पर हुआ यह कि वह गंभीर हो उठी। बोली, “आज की दुनिया में दिल कहां जो मिलेंगे! अपनी मर्जी से न इधर रही थी, न उधर जा रही हूं।”

नीलम कुछ सकपकाई, “तो...तो क्या वहाँ जो इतनी खुशी थी, वह सब झूठ था?”

“था भी और नहीं भी था, नीलम। सोच लिया था कि अब जा न सकूंगी, इसलिए सुखी थी। इतनी सुखी थी कि जब मुझे गिरफ्तार किया गया, तब मैं पागल-सी हो गई थी। पर अब जाना ही है, जमना फिर जुलेखा बनने लगी है, तब जमना का दुःख उसके साथ क्यों जाय?”

“पर जीजी, जमना और जुलेखा क्या दोनों नारी नहीं हैं? क्या उनके दिल की पुकार एक नहीं है?”

जीजी ने इस बार तड़पकर कहा, “दिल की पुकार वह सुने जो इंसान हो। मैं इंसान नहीं हूं। मुसलमान हूं। मेरा वतन पाकिस्तान है।

पाकिस्तान और हिंदुस्तान कभी एकदिल नहीं हो सकते ।”

नीलम ने हठात् जीजी को देखा । उसकी आंखों में शोले भड़क उठे थे, पर उन शोलों के पीछे ज्वार की उन्मत्त लहरें थीं । नीलम कांपी—वही आग और पानी...पर तुरन्त उसने अपनेको सम्हाल लिया, बोली, “तुम्हारे दर्द को समझती हूं, जीजी । पर इसी दर्द को अपनी शक्ति बनाकर हमें इंसानियत को जगाना होगा, नहीं तो...”

हठात् उतावली हो उठी जीजी बात काटकर बोली, “अब क्या तुम्हें इसीलिए बुलाया था ? कुछ और बात कर । इस दर्द को भड़कने दे ।”

नीलम के मन में जो जवाब आया वह यह था—जब दर्द भड़कता हो तब दूसरी बात कैसे की जा सकती है ! पर एक क्षण हँसने के बाद कहा, “जीजी, मैं तो तुम्हारी कृपा से आज यहां हूं, नहीं तो...”

“नहीं तो वहां राज करती । पगली, तू रानी बनती और फिर तुम्हें न मां की याद आती, न भाई की ।”

नीलम ने तड़पकर जीजी को देखा, वह मुस्करा रही थी, बोली, “जानती हूं, गुस्सा आ रहा है । अब तो जरूर आयगा, पर...पर, जाने दे, कुछ और बात कर ।”

“क्या बात करूं ?” हताश-सी नीलम ने कहा ।

जवाब में इस बार जीजी सचमुच मुंह में दुपट्टा देकर हँस पड़ी । वही अलहड़, वही मस्त हँसी । कहने लगी, “अच्छा, बातों को छोड़ । यह सब तो चलता ही रहेगा । पर हँसना मत छोड़ना ।”

नीलम खोई-खोई-सी हो रही थी । गरदन हिलाकर बोली, “हां, जीजी हँसूंगी ।”

“और मुझे याद कर लिया करना ।”

“करूंगी जीजी ।”

“अच्छा...”

“अच्छा जीजी, चिट्ठी लिखोगी ?”

“न-न, चिट्ठी-बिट्ठी के चक्कर में मत पड़ना । यों ही ठीक है ।”

नीलम ने फिर जीजी की आंखों में भाँका । क्षण-भर में उसे बहुत-कुछ याद आ गया । तभी जीजी ने एकाएक पूछा, “क्या सोच रही है ?”

“कुछ नहीं।” नीलम ने कांपकर कहा।

जीजी फिर मुंह में आंचल ठूसकर हँसी, बोली, “कुछ नहीं कैसे, तुझे मेरी पुरानी बातें याद आ रही हैं। तू सोच रही है कि मैं कैसे जा रही हूँ।”

“जीजी, जीजी ?”

“ठीक है नीलम,” जीजी कुछ गंभीर हुई, “मुझे जाना ही चाहिए। उस ओर न जाने ऐसी कितनी हिंदू औरतें पड़ी होंगी। मुहब्बत की बात क्या ? देर-सवेर हो ही जाती है।”

फिर एकाएक उसे जैसे कुछ याद आ गया हो, “अरे हां, नीलम, तुम्हारे ‘वे’ मैंने यहां भी देखे थे।”

“मेरे ‘वे’...! ‘वे’ कौन ?” नीलम ने अचकचाकर पूछा।

“वे जो छुड़ाने गये थे। जो बिसाती बने थे।” और फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी। मुझे आज भी अचरज होता है, कैसे उन्होंने मुझसे सब बातें पूछ ली थीं, कैसे मैं उनकी हर बात मानने को तैयार हो गई थी, कैसे मैंने उन्हें रतिराम का पता तक दे दिया था ! क्यों नीलम ? कौन हैं ‘वे’ तेरे ?”

“मेरे ?” नीलम ठगी-सी बोली।

“हां, कौन हैं, जो इस तरह खतरा उठाकर वहां गये थे ?”

“कुछ नहीं, मेरी एक सहेली के भाई हैं,” नीलम ने धीरे से कहा, “तुम्हें कहां मिल गए थे ?”

“यहीं कैप में देखा था। किसीको ढूढ़ रहे थे। जान पड़ता है, खतरे में जाकर लड़कियों को बचाना उनका पेशा है। कोई उनकी परिचित लड़की पाकिस्तान में रह गई है।”

“अच्छा !” नीलम तेजी से कांपी।

“तू नहीं जानती ?”

“नहीं...नहीं तो। मुझे कुछ पता नहीं।”

नीलम सहसा विवर्ण हो आई। वाणी में फंदा-सा लगने लगा। जीजी ने उधर उड़ती नजर डाली, मुस्कराई, फिर कहा, “तूने उनसे बातें तो की होंगी ?”

नीलम किंचित् सकपकाई, बोली, “हां, क्यों ?”

“वैसे ही पूछती थी कि गांठ लगी या नहीं ?”

“क्या मतलब ?” नीलम तड़पी ।

“पगली, तू औरत है ?”

नीलम भयातुर-सी मुंह देखती रह गई । जीजी सहसा हँस पड़ी । वही आंचल से भरती धीमी, पर अर्थपूर्ण हँसी, “अच्छा-अच्छा, रहने दे । तेरे बस की बात नहीं है । पर सुन, मैंने तुझे इसलिए बुलाया था, समझनी थी कि वह तेरे दिल के राजा है और अब कहीं और उलझ रहे हैं, तुझे चेता दूं, पर तू तो...”

भौचक, त्रस्त, नीलम ने तड़पकर कहा, “जीजी, कुछ और बातें करो ।”

“कुछ और बातें करूं ?” जीजी खिलर-खिलर हँसी, “दुत पगली, औरत कुछ और बात कर सकती है ?”

“कर सकती है ।”

“वह झूठी है ।” जीजी तड़प उठी । देखते-देखते भ्रू-वंक और वक्र हो आया, मुंह दहकते लौह-सा लाल हो उठा । पर उसी क्षण एक प्रौढ़ नारी ने वहां प्रवेश किया, बोली, “मिस नीलम, समय हो गया, अब आपको जाना चाहिए ।”

नीलम सकपकाकर उठी । कांपते हुए जीजी के हाथ को अपने हाथों में थाम लिया । दोनों ने एक-दूसरे को देखा । जीजी सहसा हँस पड़ी । आँसुओं से भीगी वह हँसी नीलम के शरीर में लहर की तरह तरंगित हो उठी । नीलम के मन में उठा—क्रोध और हास्य—पानी दोनों का प्रहरी है । जीजी ने कहा, “अच्छा नीलम, विदा ! हम दोनों ने बहुत-कुछ देखा । और भी बहुत-कुछ देखेंगी । उसका अब डर नहीं है ।”

नीलम ने धीरे से कहा, “डर निकल गया, यही क्या कम है !”

“हां, यही क्या कम है, पर डर-डर में भी फर्क है, बहन ।”

“है, जीजी, है ।”

जीजी फिर हँसी, बोली, “तेरा डर अभी नहीं निकला है, पगली, अपने उनसे भी डरती है, तभी तो वह भटकते फिरते हैं । उनसे साफ-साफ बातें कर । बिना मुहब्बत इतना खतरा कोई नहीं उठा सकता । इतनी

बड़ी तकदीर को इस तरह न ठुकरा ।”

और फिर नीलम को गले से लगाकर उसने इतने जोर से दबाया कि लगा, जैसे उसके प्राण खिंचने लगे हों, पर वह सब क्षणिक था । जीजी एकबारगी जाने को मुड़ी, पर दो कदम आगे बढ़कर एक झटके के साथ वह फिर लौटी और फिर उसी तरह अंदर चली गई । हतप्रभ, अवाक् नीलम ने पाया, उसके हाथ में कागज है उसी कागज को एक निधि की तरह सम्हाले खोई-खोई-सी नीलम मा के पास लौट आई । मोटे-मोटे अक्षरों और टूटी-फूटी हिंदी में उस कागज पर जुलेखा ने लिखा था :

“नीलम बहन,

जब तू यह खत पढ़ेगी तब मैं शायद कंटीले तारों के उस पार पहुंच जाऊंगी । शायद तू भी नहीं जानती कि मेरा एक बेटा है । रतिया के भाई ने उसे छिपा लिया है । उसकी बुढ़िया मा मर गई है । अब उसे कौन पालेगा ? मैं नहीं चाहती कि वह डाकू बने । पर साथ भी नहीं ले जाऊंगी । न किसीसे कहूंगी । इसलिए किया (क्या) तू उसे देख लेगी ? अपने उनसे कह देना । वह जरूर देखेंगे ।

जरूर कह देना । साल-भर का है । नाम है किशनकुमार । जमना का बेटा जुलेखा का बेटा न बने, इसलिए छोड़े जा रही हूं । तू हूँसेगी, मा के ये टुकड़े कैसे ! पर जब कभी न मरनेवाली बड़ी मां कट गई, तब हम मरनेवाली मांओं की क्या बात !

अच्छा नीलम, याद रखना ! हम बड़ी किस्मतवाले हैं । हर एक की जिंदगी में ऐसे मौके कहां आते हैं, जैसे हमारी में आये !

अगर बेटे को न देख सके तो कोई बात नहीं, पल ही जायगा । शायद हम-जैसी किस्मतवाला हो । बस, एक ही लालच दिल में है; जब वह समझदार हो, तब उसे इतना पता लग जाय कि उसकी मा ने उसे इसलिए नहीं छोड़ा था कि उसके दिल में मुहब्बत नहीं थी । मुहब्बत तो बहोत थी, पर उसकी मां यह चाहती थी कि जिस मिट्टी से उसका जनम हुआ था, उसीकी सेवा में उसका तन खपे ।

बस नीलम, मेरी बहन, मैं तो एक दिन सबकुछ भूल जाऊंगी, भूलना पड़ेगा; न भी भूलूँ तो किया (क्या) उसे देखने आ सकूंगी ?

तट के बंधन

नीलम ! दिल कियों (क्यों) टूट रहा है । /क्या/क्या दिल है...
 ओफ नीलम...नीलम...अलविदा...अलविदा मर बच्चे...

—जुलेखा”

नीलम बड़ी कठिनता से पत्र पढ़ सकी । यह पता लगाना कठिन हो गया कि पत्र के अक्षर जुलेखा के आंसुओं से धुंधले पड़े गए या उसके अपने आंसुओं से । पढ़ चुकी तो उसने निश्चय किया कि कुछ भी हो, वह किशन को अपने पास रखेगी । पर वह मां से एकाएक कुछ न कह सकी । वकील साहब से भी कहने को उसका जी न हुआ, पर उनसे बात किये बिना कुछ हो भी नहीं सकता था । इसलिए वह उनसे बातें करने चली । उनके कमरे के किवाड वैसे ही उड़के हुए थे । जैसे ही खोलने को उसने हाथ बढ़ाया, उसके कानों में एक चिर-परिचित स्वर पड़ा । वह सिहर उठी । किवाड़ों की दरार को धीरे-धीरे और चौड़ा किया । तब उसके अर्द्ध-उन्मीलित उत्सुक नेत्रों ने देखा—मेज के दो ओर कुरसियों पर बैठे हैं कन्हैयालाल चावला और गोपाल । दोनों अतिशय गंभीर हैं । चावला साहब के नेत्रों से बहकर आंसुओं की कई धाराएं ठोड़ी से नीचे तक आ गई हैं । वे दोनों धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं । नीलम उत्सुकता से सुनने लगी—

गोपाल ने कहा, “मैं पता लगा चुका हूं । वह अब सुखी है । उसकी गोदी में दो बच्चे हैं, एक दो वर्ष का लड़का और एक नवजात कन्या ।”

“तुमने उसे देखा ?” चावला ने व्यथित स्वर में पूछा ।

“नहीं, कोई लाभ नहीं समझा । मुझे तो दुःख-होता ही, उसकी सुख-शांति भी नष्ट हो जाती ।” गोपाल ने गंभीरता से उत्तर दिया ।

और फिर चावला को कुछ कहने का अवसर न देकर वह निःश्वास खींचकर बोला, “मैंने निश्चय कर लिया था कि अब उसे वहीं रहना चाहिए । इसीमें उसका भला है, पर विधि को शायद यह मंजूर न था । लाहौर आकर मैंने भारत के उप-उच्चायुक्त को इस बात की सूचना दे दी ।”

“तुमने...” चावला के स्वर में अचरज था ।

गोपाल ने उसी दार्शनिक की-सी गंभीरता से कहा, “जी हां, मैंने । मैं

नहीं चाहता था, फिर भी मैं स्वयं दफ्तर में गया। न जाने वह कौन-सा 'मैं' था ? न जाने एक इन्सान में कितने 'मैं' होते हैं..."

"फिर क्या हुआ ?" एकदम श्री चावला ने पूछा।

"अनीला कैप में आ जायगी।"

"सच !" वकील साहब कुरसी से जैसे कूद पड़े।

"हां, बड़ी कठिनता से उसने स्वीकार किया है कि वह अनीला है, पर स्वीकार कर लिया है।"

फिर कई क्षण सन्नाटा रहा। एक-दो बार गहरे निःश्वास का स्वर उठा। नीलम की छाती पर वे क्षण जैसे घन बनकर कड़के, पर वह कुछ सोच पाती कि तभी उसने सुना, वकील साहब जैसे जागकर बोले, "बच्चे साथ आयेंगे ?"

"जी हां।"

"उसे यहां आने में कई दिन लग सकते हैं ?"

फिर मौन। युगों-जितना भारी मौन।

"तबतक देखूंगा।" गोपाल ने धीरे से न जाने किस प्रश्न के उत्तर में कहा।

फिर सन्नाटा, जो गहर-गहर बोलता और धुमड़-धुमड़कर उमड़ता। इस बार जो स्वर उठा वह रुंधा हुआ था, "यही रुकोगे ?"

"हां, उसे लेकर जाऊंगा।"

न जाने क्या हुआ, वकील साहब ने तेजी से अपना सिर मेज पर दे मारा और फफक-फफककर रो पड़े। क्षण-भर में हिड़कियां बंध गईं। गोपाल ने कठोर स्वर में जैसे व्यंग्य किया, "आप रोते हैं ?"

रुदन का स्वर अबाध गति से सिसकियों में फूटता रहा। गोपाल ने फिर उसी कठोरता से कहा, "रोना ठीक नहीं है।"

रुदन फिर भी बंद नहीं हुआ। गोपाल अब जैसे चिल्लाकर बोला, "रोना बंद कीजिये। मैं जाता हूं। इतनी सूचना देने आया था।" फिर जैसे कुछ याद आ गया हो, बोला, "नीलम से कुछ मत कहियेगा।"

और इससे पहले कि कोई कुछ समझे, गोपाल तेजी से द्वार खोलकर बाहर आ गया। जैसे बम-विस्फोट हुआ हो, गिरते-गिरते बचा, "तुम ?"

नीलम ने सुबकियों को एकदम पीकर कहा, “जी ।”

“कब से खड़ी हो ?”

“काफी देर से ।”

“सब सुन लिया ?”

“जी ।”

गोपाल व्यग्र हो उठा । अवाक् देखता रहा नीलम को । नीलम ने ही कहा, “मां सो रही है । उधर चलिये । कुछ जरूरी बातें करनी हैं ।”

“मुझसे ?”

“जीहां ।”

अन्दर से सुबकियां उसी तरह उठ रही थीं, जैसे अंनडियों के भीतर से कराहट उभर रही हो । कुछ दूर चलकर गोपाल ने एकाएक कहा, “नहीं, नीलम । अब जाने दो । फिर कभी सुनूंगा ।”

नीलम न मालूम-सी मुस्कराई, “नहीं रुक सकेंगे ?”

“हां, मन नहीं होता ।”

“अब क्या डर है ? अनीला जीजी आ ही रही हैं ।”

“नीलम !” गोपाल कुछ कानर-सा हुआ ।

“न-न, ऐसे नहीं । आपकी कृपाओं का बोझ इतना है कि सौ जन्म न उबरूं, पर मैं जानती हूं, आप बोझ रखने में विश्वास नहीं रखते । इसलिए कुछ और काम सौंपना चाहती हूं । यह चिट्ठी पढ़कर कुछ कर सकें तो करिये । मेरा आग्रह है !”

और जुलेखा का पत्र ठगे-से गोपाल के हाथ में थमाकर नीलम तेजी से अपने कमरे में भागी चली गई । बांध टूट गया था—क्या इसी अंत के लिए वह अबतक जी रही थी ।...

उस रात वह कितना रोई, उसका हिसाब शायद विधाता भी न लगा सके होंगे ।

सत्ताईस

नीलम का यह रूप देखकर गोपाल का मन अतिशय उद्वेलित हो आया। काश कि वह पाकिस्तान न जाता, काश कि अनीला का पता न लगता। वह लौट आता।...

उसकी बेचैनी ज्वार की तरह उमड़ने लगी। अपने ही आपसे उसने जैसे कहा, “लौटना तो मैं भी चाहता था, परन्तु अपने-आपसे ही पराजित हो गया। अब तो कुछ भी नहीं हो सकता। नीलम को भूलना ही होगा। अनीला का भविष्य ही मेरा भविष्य है।...

लेकिन वह भविष्य तो अपने-आपमें एक विकट समस्या है। उससे विवाह कर सकता हूँ। करना ही चाहिए। उसके बच्चों को अपने बच्चे समझना चाहिए। लेकिन ..लेकिन जब उसे उन बच्चों के पिता की याद आयगी, याद तो आयगी ही, आनी ही चाहिए, बच्चे सामने होंगे तो उनके पिता की याद आना स्वाभाविक है। वह याद दर्द भी पैदा करेगी। कुछ भी हो, है तो मनुष्य ही। मनुष्य के हृदय में याद दर्द ही पैदा करती है। और फिर उस पिता की न तो मृत्यु हुई है और न उससे विग्रह-विराग हुआ है। उससे विच्छेद होगा, केवल इसलिए कि वह पाकिस्तानी है। क्या पाकिस्तान का रहनेवाला इन्सान नहीं होता? उसके हृदय नहीं होना? हृदय में कामना नहीं होती? क्या उसे मनचाही पत्नी पाने का अधिकार नहीं है?...

उसने बार-बार गर्दन हिलाकर स्वयं अपने तर्क का समर्थन किया। लेकिन फिर तुरन्त एक और तर्क में उभर गया—लेकिन क्या अनीला उसकी मनचाही पत्नी है? क्या उसने मन से उस पति का वरण किया है?...नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता। यह गलत है। यह पैशाच विवाह है। बरबस मुसीबत में फंसी अबला को अपनी पैशाचिक काम-वासना का शिकार बनाने-जैसा है।...

वह उत्तेजित हो उठा। चीखकर कहा, “नहीं-नहीं, यह अन्याय है, और अन्याय से किया गया विवाह विवाह नहीं है। वह भंग हो सकता है। भंग होना ही चाहिए। लेकिन...”

लेकिन कोई भीतर बैठा शरारत से धीरे-धीरे हँसा। फिर बोला, तुमने तो मनोविज्ञान पढ़ा है। लेखक भी हो। क्या कोई किसीसे बरबस विवाह कर सकता है? बरबस सन्तान पैदा हो सकती है? चार वर्ष के लम्बे समय तक सुखपूर्वक रहा जा सकता है?...”

“हां, रहा जा सकता है। प्रेम हो या पैशाचिक कामवासना, दोनों के मूल में स्त्री-पुरुष का प्राकृतिक सम्बन्ध है; और वह सम्बन्ध जब पूर्ण हो जाता है तब देर या सवेर; जीवन सुखमय हो ही सकता है...”

अपने ही तर्क से पराजित होकर गोपाल शिथिल हो आया। तब वह होटल के अपने एकान्त कमरे में पलंग पर लेटा था। ऊपर बिजली जल रही थी, भीतर अन्तर्दाह था और पास की छोटी मेज पर एक पुस्तक अधखुली रखी थी। उसके हाथ सिर के नीचे थे और नेत्र कहीं सुदूर अस्तित्वहीन जगत् में भाँक रहे थे। एकाएक करवट बदलकर उसने पुस्तक उठा ली और पढ़ने की चेष्टा करने लगा। पर छापे के वे शब्द नेत्रों के ज्वार में डूब गए और उनके स्थान पर अन्तर के शब्द उभरने लगे—न-न, यह मात्र प्राकृतिक सम्बन्धों का प्रश्न नहीं है। सामाजिक सम्बन्ध भी है, विशेषकर हिन्दू नारी के सामने तो सदा यही प्रश्न रहा होगा, ‘उधर जाकर क्या उसका समाज उसे स्वीकार करेगा? नहीं करेगा।’ हां, उसने सोचा होगा कि नहीं करेगा। सोचकर भाग्य को धिक्कारा होगा और फिर चुपचाप भवितव्यता को स्वीकार कर लिया होगा...”

जब लेटे रहना असम्भव हो गया तो वह उठकर बैठ गया और उत्तेजित स्वर में कहने लगा, “भवितव्यता! जो प्रेम करते हैं वे भवितव्यता को नहीं मानते। वे आपदाओं से नहीं डरते। मृत्यु को प्यार करते हैं।

अनीला जीवित क्यों है? मर क्यों नहीं गई? उसे मर जाना चाहिए था, क्योंकि वह मुझसे प्रेम करती थी? समूची मेरी थी। उसने दूमरे से शादी की कैसे? हां, कैसे कर सकी? कैसे मां बन सकी? वह औरों-जैसी नहीं थी। शिक्षिता थी, डाक्टर थी। डाक्टर...

भीतर का गोपाल फिर शरारत से हँसा। अस्फुट स्वर में बोला, डाक्टर...हां डाक्टर थी, तभी तो नहीं मर सकी। डाक्टर के पास हृदय

कहां होता है। वह उस ज्ञानी की तरह होता है, जो बालू से तेल निकालने की धुन में तिलों से तेल निकालना भूल जाता है।”

गोपाल अत्यन्त त्रस्त हो आया। बैठ भी न सका। कमरे में इधर-से-उधर, उधर-से-इधर टहलने लगा। सोचने लगा। शायद रात-भर सोचता ही रहता, यदि काल और नींद दोनों मिलकर उसके त्रस्त मन और थके शरीर को बरबस स्वप्न-लोक में न खींच ले जाते। उस अकेले कमरे में उस रात वह दो बार चौंक कर उठा। एक बार व्यग्र होकर पुकारा—“अनीला !” दूसरी बार धीरे-से अस्फुट स्वर में कहा—“नीलम, तुम कब से खड़ी थीं।”

सवेरे फिर श्री चावला से भेंट हो गई। देखते ही तीव्र स्वर में बोले, “गोपाल, तुमने सुना ?”

“क्या ?”

“अनीला अकेली नहीं आ रही।”

“तो ?”

“उसका पति भी आ रहा है।”

“क्या ! पति ! कौन पति ?”

“वही, जिसके साथ उसने विवाह किया है। वह भी हिन्दू है।”

विस्मित-विमूढ़ गोपाल एकबारगी चीख उठा, “आप क्या कहते हैं ?”

“जो कुछ सुन आया हूं।”

“कहां सुन आये हो ?”

“कैम्प में।”

अनीला ने गोपाल से मिलने से इन्कार कर दिया।

वह जानती है कि गोपाल के कारण ही वह भारत आ सकी है। यह भी जानती है कि अगर उसको इस सबका पता लग जाता, तो वह कभी ऐसा नहीं करता। अब वह क्या करे...

सारी रात इन अजनबियों के बीच लेटी-लेटी वह यही सोचती रही, सुबकती रही।...क्या गोपाल को बुलाकर सबकुछ स्पष्ट कह दे ? वह सबकुछ समझ जायगा। वह, जो कभी प्राणों से बढ़कर प्रिय था, जो सर्वस्व था, जिसके स्मरण-मात्र से उसका अस्तित्व मुकुलित हो उठता था,

उसी से वह कह सकेगी कि वह किसी और की अंकशायिनी है, किसी और की...

“नहीं-नहीं,” वह एकाएक चीख उठी, “नहीं-नहीं, किसी और की नहीं है। अपने प्रियतम की है, अपने पति की है। लेकिन...लेकिन-लेकिन कुछ नहीं, यही सत्य है। एकमात्र सत्य है और त्रिकाल में सत्य रहेगा...”

उसके वक्ष में तूफान उमड़-धुमड़ आया। शान्त होने की चेष्टा में जैसे वह और भी त्रस्त हो आई हो। शिथिल, थकी-थकी, सोचने लगती है, “लेकिन यह भय क्यों? बार-बार यह गात में कम्पन कैसा? गोपाल इन सारे वर्षों में क्या-क्या सोचता रहा है, क्या-क्या प्रयत्न उसने किये हैं, क्या-क्या कल्पनाएं मन में उठी हैं? क्या वह सोच सका है कि मैं पत्नी और मां सबकुछ बन चुकी हूं। क्या वह कल्पना कर सका है कि मैं किस-किसकी पत्नी बनी हूं, किस-किसकी?...”

अनीला एकाएक फूट-फूटकर रोने लगी—‘वह मर क्यों न गई... क्यों न मर सकी? क्या-क्या उसने नहीं देखा? भयंकर हत्याकाण्ड, वासना का वह बीभत्स नग्न नृत्य! उसने अपनी प्रिय सखी गीता को बलात्कार से सिसक-सिसककर मरते देखा। अपना अपहरण देखा, बलात्कार होते देखा, लेकिन मौत को उसपर दया नहीं आई।...

एक बार वह जलते खंडहर में कूद पड़ी थी, लेकिन वहां भी मुक्ति न पा सकी। निकाल ली गई और एक दिन उन्होंने उसे बेच देने का निश्चय किया, क्योंकि अग्नि उसके रूप को चाट गई थी। उसका दाहिना अंग पैर से लेकर कमर तक भुलस गया था। उसने तब चीखकर कहना चाहा था, “मैं डाक्टर हूं, मुझे बेचो मत!...”

लेकिन नहीं, वह कुछ नहीं कहेगी...कुछ भी नहीं कहेगी। यहां से उसे मुक्ति मिलेगी। शायद मरने का अवसर भी मिले।

और वह बिक जाती है। उसे खरीदनेवाला एक बदशऊर शराबी है। सारे रास्ते गाली बकता रहता है। लेकिन डेरे पर पहुंचते ही जैसे जादू के इशारे पर सारी दुनिया पलट जाती है। वह निरा असम्य मधुर, कम्पित स्वर में पुकारता है, “अनीला...”

अनीला कांप-कांप आती है, “कौन ?”

वह हँस पड़ता है, “नहीं पहचानती ? मैं गीता का मंगेतर !”

हर्ष और विस्मय से अनीला की चीख निकल जाती है। दौड़कर वह जैसे वह उससे चिपट जाती है, “अजित...अजित, क्या सचमुच अजित हो ? नहीं-नहीं, तुम कोई छलिया हो...”

अजित धीरे-धीरे उसकी कमर को सहलाता रहा। कहता रहा, “आहिस्ता, अनीला, आहिस्ता। हवा शिकायत करना भी जानती है।”
“.....”

धीरे-धीरे वह सब कथा कह सुनाता है। उसकी दो बहनें अभी यहीं फंसी हैं। उन्हें ढूँढ़ने के लिए ही वह अजित से अमजद बना है। उसकी आँखों में आंसू भर-भर आते हैं। उच्छ्वसित-सा बोल उठता है, “क्या से क्या हो गया, अनीला ? तुम क्या हो गई हो ?”

अनीला चीख-चीख आई, “मैं मरना चाहती हूँ, अजित। मुझे मरने की राह दिखा दो।”

अजित बिना अपने स्थान से हिले जवाब देता है, “मरना बड़ा सरल है, कठिन है जीना। क्या इन्सान सदा सरल काम ही करता रहेगा ?”

अनीला दृष्टि उठाकर फिर अजित को देखती है। उच्छ्वसित-सी कह उठती है, “अजित !”

“अजित नहीं, अनीला, अमजद कहो। तुम भी अस्मत हो। अमजद की बीबी अस्मत।”

अनीला फिर कांपती है, “क्या ?”

छद्म वेषधारी अजित पूछता है, “क्या भारत जाना चाहती हो ?”

“हां।”

“शीघ्र ही जा सकोगी। डरो नहीं।”

क्षण बीतने लगते हैं। अनीला के भीतर तूफान-पर-तूफान उठते हैं। शरीर वात के रोगी की तरह शिथिल हो जाता है। एकाएक कह उठती है, “मैं भारत नहीं जाऊंगी।”

“नहीं जाओगी ?”

अनीला चीत्कार करती है, “नहीं जाऊंगी, नहीं जाऊंगी। मैं...मैं...”

अजित सान्त्वना के स्वर में कहता है, “जानता हूं, मां बनने जा रही हो। अच्छा, अभी मुझे भी जरूरत है।”

अनीला अस्मत् बनी तो बात कुछ-की-कुछ हो गई। बुरके के भीतर पनप आई। उसने अजित की दोनों बहनों का पता लगाया। और भी न जाने किस-किसको खोज निकाला। एक पुत्र की मां भी बन गई...

यही पाप-बाध उसकी आत्मा को ग्लानि से कुतरने लगा। वह अक्सर रोती रहती, अस्फुट स्वर में फुसफुसाती रहती, “न जाने किस पापी का यह पुत्र है। यह भी पापी है, इसे मर जाना चाहिए।”

मरने का ध्यान आते ही न जाने क्यों सिहर-सिहर उठती। चेहरा पाण्डुरंग हो आता और बच्चे को वक्ष से चिपकाकर वह होश खो बैठती, “मेरे बच्चे, मुझे छोड़कर मत जाना। मैं तेरे बिना मर जाऊंगी।”

अजित सबकुछ देखता, समझता। एक दिन उसने कहा, “भारत लौट जाओ अनीला, गोपाल तुम्हारे लिए पागल है।”

वह अविश्वास से कांपी, “गोपाल! तुम गोपाल को कैसे जानते हो?”

“लाहौर में उसका एक मित्र मेरा परिचित है। उसीने बताया है कि वह अक्सर तुम्हारी खोज में वहां आता है।”

अनीला अवाक् रह गई। अजित ने फिर कहा, “चली जाओ।”

अनीला ने उसकी ओर मुंह करके विनीत स्वर में पूछा, “तुमने कहा तो नहीं?”

“तुमसे पूछे बगैर कैसे कह सकता था!”

“तो भगवान् के लिए कुछ न कहना, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। किसी-को मेरा पता न देना।”

इसके बाद अजित ने पाया कि अनीला के व्यवहार में एक अद्भुत परिवर्तन आ गया है। वह उसके पास खिंचने लगी है। कहती है, “मैं तुम्हारी पत्नी हूं, तुम्हारी ही रहूंगी। हां अजित, अब तुम्हारे बिना नहीं रह सकती। तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जा सकती।”

अजित ऊपर से अवाक् था, पर भीतर उसे सुख मिला। रात को अचानक नींद खुली तो उसने पाया कि अनीला उसके ऊपर झुकी उसके में जंगलियां फेर रही है। उसके लम्बे सुगन्धित केश उसके तकिये

पर और कन्धों पर बिखर गए हैं। देर तक स्वप्नों में खोया-खोया-सा वह बोल नहीं सका। अनीला वैसे ही मुग्ध-सी देखती रही।...

और अजित को झुकना पड़ा। उसने उच्छ्वसित स्वर में कहा, "मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता। अब तुम्हें मुझसे कोई नहीं छीन सकता।"

और उस रात अनीला ने स्वेच्छा से अजित की सेज पर आत्म-समर्पण कर दिया।

और एक दिन वह फिर मां बनी।

और एक दिन न जाने किसने जाकर भारतीय दूतावास में यह ख़बर दी कि अमजद की बीवी अस्मत का असली नाम अनीला है।

और एक दिन सारे संघर्षों के बावजूद उसे भारत लौट आना पड़ा।

जिस समय वह कैम्प में पहुँची, तो विक्षिप्त हो आई। उस अपार, अमानुषिक दुःख के बाद जो सुख उसने पाया था, वह फिर छिन गया। वह फिर अनाथ बन गई। अपने भाग्य में क्या वह वेदनाएं ही लिखाकर लाई है? क्या उसके जीवन की धारा मरु-थल के भीतर से हाँ बहती रहेगी? क्या यह सुख उसकी वेदना को तीव्र करने के लिए ही तो नहीं आया था? उसके दो बच्चे हैं, उसका पति है। नहीं-नहीं... वह अपने पति को नहीं खो सकेगी... नहीं खो सकेगी! वह नहीं जायगी... नहीं जायगी। वह गोपाल को नहीं जानती, केवल अजित को जानती है। वह अजित की है और अजित की ही रहेगी।

और उसने कैम्प के अधिकारी से सबकुछ कह देने का निश्चय कर लिया। लेकिन कह कुछ न सकी। जिस समय वह घर से कैम्प में लाई गई थी, उस समय अमजद-रूपी अजित ने एकान्त पाकर उससे कहा था, "जाओ अनीला, अपने देश जाओ, अपना देश अन्ततः अपना है। वहाँ तुम सुख पा सकोगी। गोपाल तुम्हें पहचानता है। न भी पहचाने तो भी तुम स्वतन्त्र रहकर देश के लिए बहुत-कुछ कर सकती हो। तुम्हें करना चाहिए। तुम डाक्टर हो। शायद किसी दिन ये दो देश फिर इस कड़वाहट को दूर कर मित्र बन सकें, शायद। आशा करनी चाहिए। आशा ही तो जीवन है।"

अनीला ने पागलों की तरह चीखकर कहा, "मेरी दुनिया क्यों उजाड़ रहे हो? नहीं जाती मैं भारत। नहीं जाती! यहीं रहूंगी!"

अजित ने उसे बक्ष में भरकर प्यार से सहलाया। फिर उसका मुंह अपनी आंखों के सामने करके उसके प्लावित नयनों में भांकता हुआ वेदना-व्यथित स्वर में बोला, “अब तो जाना ही है। कोई राह नहीं है। मुझे भूल जाना।”

“नहीं-नहीं।”

“नहीं, अनीला, मेरी अच्छी अनीला, भूल जाना। सब भूल जाते हैं। मैं भी तो भूल गया हूं, तुम भी भूल गईं। भूले बिना संसार नहीं चलता।”

वेदना के अथाह सागर में डूबी-डूबी अनीला जैसे ठिठक गई हो। अन्तरतम में जैसे गोपाल की मूर्ति उभर आई हो—हां, वह भी तो गोपाल को भूल गई...

इस विचार ने उसे बुरी तरह मथ दिया। कम्पित स्वर में उसने कहा, “यह संसार क्यों चलता है ! नहीं-नहीं, इसे मिट जाने दो, इसे नष्ट हो जाने दो।”...

अमजद हँस आया। बोला, “लेकिन जबतक यह नष्ट नहीं हो जाता तबतक तो जीना ही होगा, अनीला। इसीलिए भूलना आवश्यक है। मुझे भूल जाना और किसीसे मेरे सम्बन्ध में एक शब्द न कहना। इतना मेरे लिए करना। मैंने तुमसे प्रेम किया है, उसीका वास्ता देकर कहता हूं। कर सकोगी ?”...

अवाक्, हतप्रभ अनीला अजित की ओर देखती रह गई। अजित ने अत्यन्त प्यार से कहा, “मैं यहीं रहना चाहता हूं, अनीला।”

अनीला अस्फुट स्वर में बोली, “यहीं रहना चाहते हो ?”

“हां।”

“क्यों ?”

“क्योंकि यह मेरी मातृभूमि है। मेरी मां है।”

कहते-कहते अजित के जलते नयनों में ज्वार उमड़ आया। अनीला ने उसी तरह एकटक उसकी ओर देखते हुए कहा, “और मेरी नहीं है क्या ? अजित, मेरी भी मां है।”

“अनीला, तर्क मत करो। तुम जानती हो कि तुम अब नहीं रह सकती, मैं रह सकता हूं। मुझे रहने दो !”

अनीला ने सहसा सहमकर दृष्टि भुका ली। उस समय कुछ और न कह सकी। जबतक कैम्प में रही, जी-जान से कुछ न कहने का प्रयत्न करती रही; लेकिन जब भारत जाने का समय आया, वह बेबस हो गई और उसने कैम्प-अधिकारी से सबकुछ कह दिया।”

और अब उसने सुना है कि अजित लौट रहा है।

और इसीलिए उसने गोपाल से मिलने से इन्कार कर दिया।

अट्टाईस

नीलम का पत्र गोपाल के नाम—

श्रद्धेय,

उस रात के बाद मिलना नहीं हुआ। अस्वीकार नहीं करूंगी, मुझे बहुत दुःख हुआ था। अब भी हो रहा है। उस रात इतना रोई थी कि विश्वास नहीं कर पाती। अब भी रोती हूँ। आपने पत्र तक नहीं लिखा, पर अब सोचती हूँ कि यह सब ठीक ही हुआ। मैंने भी अब इस अव्यवस्थित जीवन का अंत करने का निश्चय कर लिया है। सुनीलदा रूस रवाना हो गए हैं। वहां से यूरोप होकर काफी दिन में लौटेंगे। जाने से पूर्व उन्होंने मुझे कई लंबे-लंबे भाषण दिये, जैसे कि विवाह कर-कराके खत्म करो। (जैसे यह उनके लिए खाना खा लेने से कोई अधिक महत्व नहीं रखता।) अगले वर्ष नये चुनाव होंगे। देश के रक्त में बेईमानी फैल गई है। सब चरित्रहीन हैं और चरित्रहीन व्यक्तियों का स्वभाव होता है एक-दूसरे पर कीचड़ उछालना। इसलिए जनता, सरकार, सरकारी नौकर, राजनैतिक दल, सब एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या, अविश्वास और घृणा से भर उठे हैं। मजा यह है कि दिन-भर भ्रष्टाचार करके शाम को ये सब लोग देश की दुर्व्यवस्था पर लंबे-लंबे आंसू बहाते हैं। अंतर्राष्ट्रीयता और मानवता इनकी दुर्बलता के ही छद्म नाम हैं। उनके पीछे सांप्रदायिकता का जो कुछ मुक्त हास उठ रहा है, उसे सुनकर भारत-मां फिर भय से विवर्ण हो आई है...आदि-आदि।

अन में उन्होंने कहा कि मैं आपको लिख दूँ कि इस रोमांस-चक्र से जल्दी पीछा छुड़ाकर आप देश को जगाने का काम करें। आप तो जानते हैं दादा, कि सुनीलदा को जब कुछ सूझता है, तब वह बस उसीपर लग जाते हैं। हारना उन्होंने नहीं सीखा। ऐसा ही सबको बनाना चाहते हैं। ऐसी ही शशि जीजी हैं। अच्छी जोड़ी मिली है।

हां, तो अब आप अनीला जीजी को लेकर कब आ रहे हैं ? मकान अभी खाली है। आपके आने तक खाली रहेगा। निस्संकोच आइये, परिवार बढ़ेगा। मैं शीघ्र ही विवाह करने का प्रयत्न करूंगी और यह भी प्रयत्न करूंगी कि यहीं रह सकूँ। कह नहीं सकती कि इतना साहस पा सकूंगी या नहीं, पर प्रयत्न करना मेरी सीमा है। पर गोपालदा, एक बात पूछनी हूँ, इस सारे प्रेम-व्यापार में क्या एक दया-भावना नहीं रही है ? अनीला जीजी के प्रति भी आपका आकर्षण एक दया-भावना की नींव पर ही पनपा। मैं आपके जीवन में आई, इसका कारण भी क्या दया और सहानुभूति नहीं थे ? स्पष्ट ही वे थे, इसीलिए मैं कहती हूँ कि यह प्रेम वह स्वस्थ प्रेम नहीं था, जो दो को एक करता है। मैं आपको अपना बनाना चाहती थी। मैं सदा अपनेको निर्बल-सा महसूस करती रही हूँ और आपमें मैंने सदा उस साहसी पुरुष को देखा है, जो मुझ निर्बल की रक्षा कर सके।

एक बात और स्वीकार करूंगी, कभी मेरे मन में रतिराम के प्रति आकर्षण पैदा हुआ था, पर वह अत्यन्त क्षणिक था। सोचा था, क्या इसके साथ रहकर इसका जीवन सुधार सकूंगी ? सुधार सकूँ तो कितना अच्छा हो ! कितना प्रेम प्रकट किया था उसने और मैं समझती हूँ, वह झूठ नहीं था; क्योंकि जब आप पुलिस के साथ मुझे ढूँढते हुए उसके अड्डे पर पहुँचे थे, तब मेरी लौट आने की इच्छा जानकर ही उसने आत्म-समर्पण किया था। वहां रहना स्वीकार कर लेती, तो आप मुझे नहीं पा सकते थे। यह सब क्या प्रेम के बिना संभव होता ?

क्यों दादा ? क्या यह मात्र स्त्री-पुरुष का आकर्षण नहीं है ? सब कुछ वही, चाहे वह सृष्टि की रक्षा के लिए हो, चाहे अपनेको अमर करने के लिए। इसी आकर्षण को रूप देने के लिए किसीने विवाह-संस्था

का आविष्कार किया था; और आप मानेंगे, आविष्कार के समय जो सत्य रहता है, युगों के बाद वह सत्य बना रहे, यह बात अपने-आपमें सत्य नहीं है। सो विवाह अब सत्य नहीं भी हो सकता, पर एक बात अवश्य सत्य है और त्रिकाल में सत्य रहेगी। वह है स्त्री-पुरुष के इस शाश्वत आकर्षण को संयत रखने की बात। दादा, संयत का अर्थ मैं दिशा के रूप में लेती हूँ। उसे दिशा न मिलेगी तो भटक-भटककर अपना ही नहीं, औरों का भी नाश कर लेगा। हाँ, वह दिशा युग-युग में रूप पलट सकती है, नहीं पलटेगी तो मिट न जायगी! सो क्या आज मंत्र और अग्नि के बिना भी विवाह नहीं हो सकता। शायद आज साक्षी की जरूरत रहे, कल को नहीं भी रह सकती। हाँ, उसके लिए बड़े ऊँचे चरित्र की जरूरत होगी। अभी तो इस देश में उसका अभाव ही है।

फिर दर्शनशास्त्र बघारने लगी। शशि जीजी, सुनीलदा, भैया और आप सबने मुझे कहाँ-मे-कहाँ पहुँचा दिया! अभावों और आपदाओं ने मुझे ज्ञान और अनुभूति से भर दिया है, पर मुझे तो यह सब बोझ-सा लगता है। क्या यह मेरी दुर्बलता का सूचक नहीं है? अवश्य मेरे अन्दर कहीं कुछ कमी है। मैं उसीको बुरा समझती हूँ। मैं अब इस तर्क-जाल से निकलकर आगे बढ़ना चाहती हूँ। बढ़ सकी तो मंजिल मुझे खुद ढूँढ़ लेगी। है न? इसलिए विवाह करने का निश्चय कर लिया है। चाहती थी उसके बिना रह सकती, पर लगता है कि ऐसा नहीं हो सकेगा। इसलिए लजाऊंगी नहीं। न दादा, बहुत लजा चुकी। बहुत खो चुकी...

आप समझते होंगे कि मैं भी कैसी यंत्रवत बातें करती हूँ। दादा, सच मानना, रोते-रोते अंतर की आँखें लाल हो चुकी हैं, पर उस दर्द को कुरेदने से क्या लाभ! इसलिए राह देखूंगी। आओ और इस अनिश्चित जीवन का अंत कर डालो...

सत्येन्द्रदा तेजपुर पहुँच गए हैं। मैं उनकी बहन हूँ। अब और न डरूंगी। आपसे भी नहीं भागूंगी। नहीं गोपालदा, बहुत भाग चुकी। अब कुछ करने को जी चाहता है। प्रणाम!

विनीता,
नीलम"

गोपाल का पत्र नीलम के नाम—

“प्रिय नीलम,

तुम्हारा पत्र समय पर मिल गया था, पर घटनाएं कुछ इतनी तेजी से घटीं कि उत्तर देने का अवसर न पा सका। तुमने लिखा है कि मुझे इस रोमांस-चक्र से पीछा छुड़ाकर देश को जगाने का काम करना चाहिए। यह ढोंग तो मुझसे न होगा। यह दावा बहुत बड़ा है, पर एक बात मैं अवश्य समझ सका हूं, मुझे ऐसा कुछ न करना चाहिए जिससे मनुष्य को लज्जित होना पड़े। तार्किक यहां भी मतभेद उठाकर प्रश्न को उलझा सकता है, पर उसमें फंसने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है।

रोमांस-चक्र टूट गया है। अनीला ने पाकिस्तान में जिस व्यक्ति से विवाह किया था, वह भी भारत आ गया। वह हिन्दू है और अनीला का उसको छोड़ने का बिल्कुल इरादा नहीं है। मैं कल उन दोनों से मिल आया हूं। वह पवित्र भेंट चर्चा से परे की वस्तु है। हमने जो-कुछ है, उसे स्वीकार कर लिया है। तुम्हारे निर्णय से भी मुझे बल मिला है। विवाह की तिथि की सूचना दोगी तो आऊंगा। न देना चाहो तो विश्वास रखो, अन्यथा न समझूंगा। तुम्हारे पत्र में और बहुत-सी बातें हैं, जिनको लेकर लिखने को जी चाहता है, पर अब इस मोह-जाल में नहीं फंमूंगा। उधर आऊंगा, पर कब, यह भी नहीं जानता। पर एक दिन आऊंगा अवश्य।

ललिता का पत्र मिला था। उन लोगों ने एक मार्ग चुन लिया है उनकी विजय-यात्रा शुभ हो, मंगलमय हो! सुनील रूस चला गया। उसमें जीवन है। निरंतर आगे ही बढ़ेगा। उसकी स्पष्टता से मुझे रश्क होता है। पर नीलम, एक बात न भूलना, शशि उससे अधिक सक्षम है। मालती मां बननेवाली है। उसके जीवन का लक्ष्य इससे आगे नहीं है।

अच्छा नीलम, अवसर मिला तो फिर लिखूंगा। तब तक के लिए विदा !

तुम्हारा,
गोपाल”

मालती का पत्र नीलम के नाम—

नीलम रानी,

मेरा पत्र पाकर बड़ा अजीब-सा लगा। क्या हो गया यह सब ? आगे की कथा शायद तू भी नहीं जानती। इधर मैं कुछ दिन से बड़ी अस्वस्थ-सी रहनी थी। दूध की गन्ध से मतली आने लगती थी। न कुछ करने को जी करता था, न कहीं जाने को। बस, मुंह छिपाये पड़ी रहती थी। तेरे जीजा ने कई बार लेडी डाक्टर के पास जाने को कहा, पर मैं सब-कुछ समझती थी, जाने को मन नहीं हुआ। इसी बीच में एक दिन गोपालदा का पत्र मिला कि लखनऊ में एक लेडी डाक्टर मिसेज़ अनीला ने अपना काम शुरू किया है। मैं उससे मिलूँ और अपने समाज में उसका परिचय कराऊँ। वह उस ओर की एक दुखिया बहन है, आदि-आदि।

मैं उससे मिलने गई। यों तो मैं मरीज बनकर गई थी, पर उसके व्यवहार के कारण देर तक अजनबी न बनी रह सकी। मैंने पूछा, “तुम गोपाल को जानती हो ?”

सच मानना, नाम सुनकर वह सिहर उठी और मुझे ऐसे देखा कि मैं लाज के मारे गड़-सी गई। मैंने कहा, “शायद आपको दुःख हुआ, क्षमा चाहती हूँ।”

पर मैं अपनी बात पूरी करूँ कि वह मुस्करा उठी, बोली, “आप उन्हें कैसे जानती हैं ?”

“वह मेरे मौसेरे भाई हैं।”

“ओह ! तभी उन्होंने आपको लिखा है।”

“हां, आप मुझे अपना ही समझें।”

वह फिर हँसी, “मेरे बारे में उन्होंने सब-कुछ लिख दिया होगा।”

“नहीं, इतना तो नहीं लिखा कि जिसे सब-कुछ कहा जा सके, पर कुछ बातें उनके बिना लिखे समझ गई हूँ।”

“क्या बातें ?” उन्होंने मुस्कराने की चेष्टा की।

“वे बातें अस्पताल में नहीं बताई जा सकतीं। घर आइये या बुलाइये।”

“मैं बुलाऊँ तो आओगी ?”

“मैं तो बेशरम होकर खुद कह रही हूँ।”

“तो आज आना।”

नीलम, मैं उसके घर गई। तब जो कुछ जाना, उससे मेरा जी और भी कड़वा हो आया। मुझे लगता है कि उसका अन्तर बुरी तरह घायल है, पर ऊपर से वह प्रसन्न रहती है। अपने पति को और अपनी सन्तान को बेहद प्यार करती है। अजित भी उसकी पूजा करता जान पड़ता है। यहां से एक नया साप्ताहिक निकल रहा है, उसमें उसे काम मिल गया है। उग्रपंथी है। उसकी कहानी सुनने के बाद सब उसको आदर की दृष्टि से देखते हैं। मुझे लगता है कि उसमें आग है और वह शीघ्र कुछ करनेवाला है। देश और दुनिया में फैले भ्रष्टाचार के बारे में जब बोलने लगता है तब वे भी कुछ हिचकने लगते हैं।...

यह सब जानकर मुझे बड़ा अजीब-सा लगा, पर यह सब तो हो चुका है। अब तू बता, क्या सोचा, डा० अनीला को तेरी बातें मालूम हैं। मैंने सब-कुछ बता दिया। तेरा अंतिम पत्र भी दिखा दिया। पढ़कर वह कई क्षण चुप रही, फिर कहने लगी, “मैं उसे लिखूंगी।” इसी बीच घर हो आई। कसबे में बड़े परिवर्तन हो गए हैं। बैरिस्टर बुधवार ने अपना काम तो बन्द नहीं किया, पर अब वह जनता के पास आ गए हैं। कुछ लोग कहते हैं कि अगले वर्ष जो चुनाव होनेवाले हैं, उन्हीं के लिए तैयारी है, पर मैं ऐसा नहीं समझती। वह मेरे पास आये थे। अपने धेवते को उन्होंने रख लिया है। कहते थे, “मुझे तो अब कुछ इच्छा थी नहीं, पर इसकी नानी नहीं मानी। ठीक है, उसने सहा भी बहुत है। कुछ संतोष होगा। पर मैंने तो अब सेवा का व्रत ले लिया है।”

ऊपर से ये बातें एक पराजित व्यक्ति की-सी बातें लगती हैं। पर नीलम, वह ऐसे बोलते थे कि झूठ मानने को जी नहीं करता। बूढ़े हो गए हैं। खाल लटक गई है। बाल तो जैसे युगों से श्वेत थे। मुझे तो सब-कुछ अच्छा नहीं लगा।

और शशि के भाई यहां से फिर चले गए हैं। मां तुम सबको याद करके रोती थी, “मुझसे सब बिछुड़ गए।” नीलम ! कैसी है दुनिया ! जो बन्धन कभी इतने दृढ़ लगते थे, वे आज स्वप्न बन गए। उनकी याद

भी नहीं कर सकती। नये बन्धनों का मोह कितना सर्वग्रासी होता है !

अच्छा, अब नहीं लिखा जाता। एक और बन्धन मुझे जकड़ने को आ रहा है। शशि को नमस्कार कहना। उस एक ने हमें क्या-से-क्या बना दिया !

अच्छा नीलम, दूसरे पत्र तक,

तेरी मुंहबोली,
माली”

अनीला का पत्र नीलम के नाम—

“नीलम बहन,

तुमसे कभी मिलना नहीं हुआ, पर इन कुछ दिनों में तुम्हारे बारे में इतना कुछ जान गई हूं कि अपनेको अजनबी कहते झूठी होने का डर लगता है। तुम्हारी मां की और तुम्हारी कहानी सुनकर मुझे तुमसे और भी मुहब्बत हो गई है। सोचती हूं, दुनिया में कष्ट है तभी तो मुहब्बत है, नहीं तो शायद सब एक-दूसरे को फाड़ खाते। मैंने क्या नहीं खोया, पर हर बार खोने के बाद मुझे जो मिला, वह अमूल्य था। यह ठीक है कि मैंने पा-पाकर खोया है, पर उस खेल से अब मैं ऊब उठी हूं और चाहती हूं कि जो-कुछ अब है, वह बना रहे।

तुम नहीं जानती कि मुझपर क्या-क्या बीती है। शायद सुना होगा, पर जो हुआ, शब्द उसे बताने में सदा असमर्थ रहेंगे। कल्पना भी उसका चित्र नहीं उतार सकेगी। पर अब उन बातों को याद क्यों किया जाय ? सपना-सा लगता है। अस्तित्व-नास्तित्व का रहस्य शायद यही है। तुम भी कहोगी कि डा० अनीला क्या दार्शनिकों-सी बातें करती है, पर तुम तो जानती हो, पीड़ा मनुष्य की सबसे बड़ी शिक्षिका है।

पर यह पत्र मैं तुम्हें यह सब बताने को नहीं लिख रही। कुछ और कहना चाहती हूं। उसीकी भूमिका है। जब मन में कुछ दुविधा होती है, या कहीं अस्पष्टता होती है, तभी भूमिका की जरूरत होती है।

तो मैं कहना चाहती थी कि तुम गोपाल को खूब अच्छी तरह जानती हो, इतना कि प्रेम करने लगी हो... शायद ठीक लिख रही हूं। शायद गलत। हां, गलत भी हो सकता है, पर इतना सत्य अवश्य है कि तुम

उनसे प्रेम करना चाहती हो। अबतक उस ओर से कोई जवाब तुम्हें नहीं मिला। मिल नहीं सकता था। नहीं जानती कि अब भी उधर से कुछ पहल हो सकती है। वह निर्द्वन्द्व होकर अपने-आपको तुम्हें सौंप सकते हैं। नीलम, इस गत्यवरोध को तुम्हें तोड़ना होगा, तुम्हें उन्हें पाना होगा। मैं जानती हूँ कि मैं वह कुछ लिख रही हूँ, जो मेरे अधिकार से बाहर की बात है। पर नीलम, तुम नहीं जानती कि मैं अब भी उन्हें चाहती हूँ। वह महान् हैं, जो कुछ हुआ, उसका दुःख वह नहीं मानेंगे। जीवन को बांधकर वह नहीं चलते। पर उपचेतना अवसर आने पर चूकती नहीं। उसकी चिंता मनुष्य कर ले तो कितना अच्छा हो! इसलिए नीलम, मैं तुमसे विनती करती हूँ कि तुम उन्हें मुझसे वापस ले लो। जानती हूँ कि मेरी बात बुरी लग सकती है; पर सच मानो, चाहती तुम भी यही हो। और चाहती तो मैं भी यही हूँ...

मैं क्या लिख गई! मैं तुमसे झूठ बोलना चाहती थी, नीलम, पर उस निर्दय उपचेतना ने मेरा छल प्रकट कर दिया।

पर जाने दो इन बातों को। मैं अजित से इतना प्रेम करती हूँ कि मेरी उपचेतना मुझे तंग न कर सकेगी। सत्य को स्वीकार कर चुकी हूँ, पीछे नहीं हटूंगी, पर उन्हें सुखी जरूर देखना चाहती हूँ। तुम उन्हें सुखी कर सकती हो। मैं जानती हूँ कि मैं गलत नहीं कह रही। फिर भी तुम्हारे पत्र की राह देखूंगी। देखूँ न?

तुम्हारी बहन,
अनीला"

नीलम का पत्र गोपाल के नाम—

“प्रिय गोपालदा,

पत्र मिल गया। मैंने आकाशवाणी की नौकरी छोड़ दी। बस, पढ़ूंगी और पढ़ाऊंगी। विवाह करने का भी निश्चय कर लिया है, पर आज ही करने का नहीं। आप ही ने तो कहा था कि वह होता है, किया नहीं जाता।

आपकी राह अब नहीं देखूंगी। जब मन चाहे, आइये। मकान में किरायेदार आ बसा है। कोई समाजवादी कवि है। प्रतिक्रिया शोले उगला

करता है। शशि जीजी उसकी बड़ी प्रशंसक हैं। सुनीलदा के पत्र आ रहे हैं। उनमें 'पैशन' है। 'पैशन' की हिंदी इस वक्त मुझे याद नहीं आ रही है। मुझमें भी अंग्रेजी की कैसी दासता आ गई है ! शायद हिंदी-वालों में 'पैशन' है ही नहीं। परीक्षा पास है, इसलिए लंबा पत्र नहीं दे सकती।

आपकी,
नीलम''

नीलम का पत्र अनीला के नाम—

जीजी,

तुम्हें प्रत्यक्ष नहीं देखा तो क्या हुआ ! इतना सुना है कि तुम्हारी नस-नस से वाकिफ हूं। देखा, कितनी बड़ी स्पर्धा है मेरी ! जान न पहचान, खालाजी सलाम !

बुरा न मानना जीजी ! मैं आज मजाक के मूड में हूं। पड़ोस में एक कवि आ बसा है। अंगारभक्षक पक्षी की तरह वह भी शायद आग खाता है और शोले उगलता है। कविता सुनाने का उसे बहुत शौक है। लंबे-लंबे उसके बाल हैं। शरीर ताड़ से होड़ लेता है, पर है गठा हुआ। नयन नुकीले हैं और मुख नारी की तरह कोमल।

बंगाली है। मां जब उससे कुछ कहती है, तब मेरी तरफ देखकर मुस्कराता है और कहता है, 'बेन की बोले छैन आमि तो जानि ना। कोबिता शुन बेन। आमार देशे बोड़ो-बोड़ो कोबि। पोरोंतु रोबि ठाकूर बोड़ो नाहि।'।

कहता है कि वह इस लोक का नहीं, स्वप्नलोक का कवि है। वह शरत को भी पसंद नहीं करता। उसे आंसू बहानेवाला नारी का पुरुष-रूप-मात्र मानता है, करुणा का पुजारी; करुणा, जो पुरुष को कापुरुष बनाती है। करुणा+पुरुष=कापुरुष। इसकी व्युत्पत्ति सुनोगी ? 'रु' तो पुरुष में है ही, 'ण' होता है कर्णकण्ठ, इसलिए दोनों लुप्त हो गए। शेष बचा क-न-आ, सो 'का' बनकर पुरुष के सिर पर चढ़ बैठा। इस तरह कापुरुष बन गया है। सो 'कोबि' महाराज का परिचय दे चुकी हूं। वैसे वे कभी-कभी गम्भीर होने का नाटक भी करते हैं। मेरा दुर्भाग्य,

मुझे उसी समय खूब हँसी आती है। तब क्रुद्ध होकर वह मुझे श्राप देने के लिए दो चुल्लू जल की तलाश में निकल पड़ते हैं...जाने दो इस हास्य-पुराण को।

कुछ दिन बीते, गोपालदा को एक पत्र लिखा था, उसीकी नकल भेज रही हूँ। उन्हें न तुम जानती हो, न मैं। आज ही पत्र आया है, वह वापस कसबे में चले गए हैं, वहीं रहेंगे। कुछ दिन जमकर लिखेंगे।

मालो को नमस्कार कहना और जब चाहे याद करना, जरूर करना। हो सका तो मिलने आऊंगी। अब तो कसबे जा रही हूँ। जरूरी काम आ पड़ा है।

इस पत्र की भाषा का बुरा न मानना। तुम्हारे चरग छूती हूँ, माफ कर देना। जो एक बार किसीसे प्रेम करता है, सदा करता रहता है। जीजी, प्रेम कभी नहीं टूटता। जो टूटता है, वह प्रेम नहीं है और विवाह का प्रेम से कोई संबंध नहीं है। अच्छा !

तुम्हारी,
नीलम''

गोपाल का पत्र नीलम के नाम—

“पत्र मिला। मैंने अब तुम्हारे कसबे में ही रहने का निश्चय किया है। लिखने को बहुत-कुछ हो गया है। दिल्ली नहीं आऊंगा। मेरा मतलब यह है कि तुमने मकान किराये पर उठाकर ठीक किया। तुम भी कभी इधर आना। देखोगी, जमाना कैसे भाग रहा है। मां को प्रणाम कहना।

और हां, तुम्हें अपनी ममेरी बहन सरला की याद है न ? कलकत्ते के एक गरीब क्लर्क को खरीदकर उसका गठजोड़ किया गया था। सुना है, उसने अपने पति को जहर खिलाकर मार डाला। वह अब जेल में है।

और तुम्हारी उस जीजी के बच्चे को मैं ले आया था। पहले तो रतिराम के भाई ने आनाकानी की, पर फिर दे दिया। शीघ्र ही तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। मेरी सलाह है कि उसे उसकी मां के पास पहुंचा दो। बच्चा मां का होता है। सोचकर देखना।

—गोपाल''

नीलम का तार गोपाल के नाम—

“पहली ट्रेन से पहुंच रही हूं।

—नीलम”

उन्तीस

नीलम का पत्र पाकर अनीला का अंतर्दाह फिर सुलग आया। समझ रही थी कि उस जीवन का अंत हो चुका है, पर तभी उसमें सोई पड़ी प्राणों की चिनगारी फिर दहकने लगी। कमजोरी के उन क्षणों में चाहा कि कहीं भाग जाय, कहीं दूर, जहां न स्मृति हो और न स्मृति का कोई उपकरण। पर क्या वह स्थान इसी धरती पर है और हो भी तो वह क्यों जाय ? नहीं, वह कहीं नहीं जायगी, यहीं रहेगी और गोपाल को यहीं बुला भेजेगी।...

लेकिन यह गोपाल कौन है। हां, कौन है ? हाय रे मन, यही तो छल है। गोपाल कभी सामने आ खड़ा होता है, कभी मन पर अंकित हो जाता है, कभी स्मृति बनकर टीसने लगता है और इसी गोपाल को वह नहीं जानती ? इसीसे बचकर वह भाग जाना चाहती है।...

एक दिन उसने अजित से कहा, “हम न आते तो कितना अच्छा होता !”

अजित ने उत्तर दिया, “लेकिन अब तो आ चुके हैं और आना बुरा क्यों है ? न सही उधर, मैं अपना काम इधर भी कर सकता हूं।”

अनीला उस काम को खूब जानती है, इसीलिए डरती भी है। बोली, “दोनों देशों को फिर से एक करोगे ?”

अजित हँसा, “पगली, दोनों को फिर भारत नहीं बनाना मुझे। दोनों दो रहें, पर उनकी हकूमत एक तरह की हो, उनके विचार एक हों, यह प्रयत्न मैं करता ही रहूंगा।”

“क्यों ?”

वह फिर हँसा, “जैसे तुम कुछ जानती ही नहीं। मैं दोनों देशों में

समाजवादी सरकार स्थापित करने का स्वप्न देखता हूं, अनीला ।”

अनीला जानती है कि वह निर्मोही अर्जुन की तरह केवल लक्ष्यभेदी है। व्यवहार में इतना नपा-तुला है कि जानता है, कब क्या किया जाना है। प्यार के क्षण तक उसके नियत हैं। उन क्षणों में जी भरकर, जानवर की तरह प्यार करता है; पर जब वे क्षण बीत जाते हैं तब उस निर्मोही के दीये का तेल जैसे चुक जाता है। समझता है कि सवेरा हो गया। प्रेयसी के सहचरी बनने का समय है। उस देश में यह सब खूब निभता रहा, क्योंकि सिर पर सदा तलवार लटकती रहती थी। इस देश में मुक्ति है, इसीसे सब यन्त्रवत् लगता है। फिर उसे किसीकी याद आती है। उस याद को भुलाने के लिए वह अपने-आपको, सारे-के-सारे को, उसे देने को व्यग्र रहती है। पर अजित है कि दूर-ही-दूर चला जा रहा है। शेष क्षणों में वह प्यार की नहीं, लक्ष्य की बात करता है। एक दिन बोला, “अनीला, प्रैक्टिस के साथ लक्ष्य की बात न भूला करो। तुम्हें बहुत काम करना है।”

“क्या काम ?” अनीला जानकर भी अनजान बनी।

“जनता को जगाने का। उसे यह बताने का कि स्वराज्य का यह ढोंग अब अधिक दिन न चलेगा। कागज के फूल खुशबू नहीं दे सकते।”

अनीला इस कड़वी उपमा पर मुस्कराकर रह गई। लेकिन अजित, जैसा कि उसका स्वभाव था, उस काम में डूब गया। उसका साप्ताहिक शोले उगलने लगा। धीरे-धीरे उसकी नियमितता, व्यवस्थित अनियमितता का रूप लेने लगी। अनीला ने निरन्तर कोशिश की कि वह शान्त रहे। पर जब से मालती उसके सम्पर्क में आई है, वह उस दुहरी जिन्दगी से ऊबने लगी है। वह आते ही अपने गोपालदा की बात शुरू कर देती है, विशेषकर नीलम के लिए उन्होंने क्या-क्या किया, ये सब बातें न जाने कैसे और क्यों बार-बार दोहराई जातीं। उन क्षणों में अनीला को भी बीते स्वप्न-जैसा बहुत कुछ याद आ जाता। अन्तर का द्वन्द्व तीव्र हो उठता। वह टूट जाती, बिखर-बिखर जाती।...

“नहीं-नहीं, उसने एक दिन निश्चय किया कि यह ईमानदारी नहीं है। यह...यह धोखा है।”

और अगले दिन मालती के आने के समय वह दूसरे द्वार से बाहर

चली गई। तीसरे दिन भी वह घर पर नहीं थी। चौथे दिन उसने अजित से कहा, “मुझे साथ क्यों नहीं ले चलते?”

अजित ने उसकी ओर गौर से देख कर कहा, “तुम्हें क्या हो गया है अनीला, कौन ले चलेगा तुम्हें? तुम्हें तो स्वयं दूसरों को ले चलना है। तुम हो कि अपनेको भूलकर सरकारी अफसरों की बिरादरी में घुसी जा रही हो।”

अनीला बोली, “यही तो कहती हूं कि मैं वहां नहीं जाना चाहती।”

उत्तर सुनकर अजित ने सहसा फिर अनीला को देखा, पर बोला कुछ नहीं। चुपचाप बाहर चला गया, पर रात के समय (प्रेम के घण्टे में) उसने कहा, “अनीला, मैं यह नहीं कहूंगा कि तुम किसीसे मिलो मत, पर देश की बरबादी में इन लोगों का कम हाथ नहीं है। यह निकम्मे ही नहीं हैं, खून चूसनेवाले भी हैं।”

अनीला ने कहा, “जानती हूं। ऐश करने के लिए उन्हें पैसा ही नहीं मिलता, लायसेंस भी मिलता है।”

“बेशक, इसी स्थिति को हमें पलट देना है। यह बिना समाजवाद के सम्भव नहीं है और समाजवाद आर्यग्रा क्रान्ति से।”

“यानी रक्तपात से।”

“हो सकता है। इस समय तो हम बिना रक्तपात के ही इस ढांचे को बदलना चाहते हैं। अगले वर्ष नये चुनाव होंगे, पर उससे कुछ न हुआ तो हम दूसरे मार्ग को भी ग्रहण कर सकते हैं।”

“कौन-सा मार्ग?”

“अभी सोचा नहीं है। अभी तो केवल इस रामराज्य की प्रवंचना से लोगों को सावधान करना है। तुम्हें गांवों में जाना चाहिए।”

“मैं जाऊंगी।”

और सचमुच अनीला गांवों में जाने लगी। वहां उसने देखी गरीबी, देखा अज्ञान और देखी एक धुधली, अस्पष्ट-सी चेतना-धारा। अनुभव किया कि जैसे राजनीति ने सबको ग्रस लिया हो, सबको त्रस्त कर रखा हो। सभी दल जनता का हितैषी बनने का दावा लेकर आते हैं, पर उनमें से अधिकांश हैं अपने ही हितैषी। जो सचमुच हितैषी है वह हर बात

को लेकर प्रतिद्वन्द्वी को गिराने की चेष्टा नहीं करते । लेकिन आज का जनतन्त्र अपने अतिरिक्त शेष को दुष्ट मानकर चलता है, क्योंकि अपने को श्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए दूसरे को बुरा दिखाना ही होता है । इस क्रम में उसका अपना सत्य भी पीछे रह जाता है ।...

अनीला के मन में ऐसे ही अनेक अस्पष्ट और धुंधले विचार उमड़ने-धुमड़ने लगे और स्पष्टता के अभाव में वह तड़फड़ाने लगी । विभाजन से पूर्व वह गोपाल से घंटों बातें किया करती थी । उस समय वह उसे इसी तरह की अनेक बातें बताया करता था कि राजनीति में जो मानवता की रक्षा की पुकार लेकर चलते हैं वे ही सबसे पहले अपनी मानवता की हत्या करते हैं । 'स्वतन्त्रता' और 'जनतन्त्र' जैसे शब्द धोखा देनेवाले हैं, क्योंकि स्वतन्त्रता शब्द के अतिरिक्त और कहीं नहीं है और जनतन्त्र वास्तव में गिरोह-तन्त्र है, जो कुटुम्ब और कबीले का कुछ विकसित रूप है । दोनों शब्द सापेक्ष हैं । जिस दिन जनता वास्तव में स्वतन्त्र होकर अपनी शक्ति को पहचान सकेगी, उस दिन तन्त्र रहेगा ही नहीं । इत्यादि-इत्यादि ।

दुःखी होकर एक दिन अनीला ने कहा, "मैं डाक्टर हूँ । जनता की सेवा मेरा धर्म है । मैं किसी वाद में नहीं पड़ सकती ।"

अजित हँस पड़ा, "यह भी एक वाद है आदर्शवाद । और आदर्शवाद मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है, अनीला । वह उसे जीवन से भागना सिखाता है ।"

अनीला ने तड़पकर कहा, "तुम कहना चाहते हो कि मैं जीवन से भाग रही हूँ । नहीं, मैं वही कह रही हूँ जो मुझे उचित लगता है । अपनी आत्मा की आवाज सुनना भागना नहीं है ।"

अजित ने तुरन्त जवाब दिया, "वह अपने-आपमें भागना हो या न हो, पर जो भागना चाहते हैं उन बुजदिलों के लिए आत्मा की आवाज एक शानदार आवरण है ।"

अनीला सहसा तिलमिला उठी । उसने तीव्र होकर कहा, "मैं भागूंगी ? तुमने तो मुझे देखा है ? फिर तुम कैसे कह सके ? अपना काम करते हुए मर जाऊंगी, पर किसी व्यक्ति और दल की किसी गलती का

लाभ उठाकर उसे कलंकित करने का शुभ काम मैं नहीं करूंगी।”

अब अजित के व्यग्र होने की बारी थी। तलखी से बोला, “अचरज कि एक नारी ऐसा सोचती है !”

अनीला बौखलाई-सी और भी सख्त आवाज में बोली, “तुमने नारी की क्या बात कही ! क्या तुम कहना चाहते हो कि नारी किसीको गिराने में बहुत कुशल है ?”

अजित ने सहमा जवाब नहीं दिया। अपनेको संभालने की जी-जान से चेष्टा कर रहा था। अनीला ने उसी तीव्रता से फिर पूछा, “मैं कहती हूँ कि तुम चुप क्यों हो ?”

“इसलिए कि तुम्हें आवेश आ रहा है।”

“और जैसे कि तुम शान्त हो !”

“अनीला,” अजित ने तिनक कर कहा, “तुम डाक्टरनी हो। बहुत कुछ देख चुकी हो। बहस में तुमसे पार पाना मेरे लिए आसान नहीं है। कुछ भी करने को तुम स्वतन्त्र हो। अब कुछ नहीं कहूंगा।”

और वह उठकर चला गया। उसके उठने और जाने में एक प्रयत्न था, किसीसे अपनेको तोड़ने का। उसके चेहरे पर घृणा न हो, पर उपेक्षा अवश्य थी। अनीला कई क्षण स्तब्ध-सी देखती रही। फिर जैसे टूटती चली गई। जैसे किसीने पुकारा हो, तेजी से उठकर अन्दर गई। दोनों बच्चे सो रहे थे, शान्त-निद्रान्द्र, मानो स्वप्न-लोक की पगियां उन्हें लोरियां सुना रही हों। बालक का नाम था मनोज और बालिका थी मंजु। दोनों को देखती-देखती अनीला कहीं-से-कहीं पहुंच गई। बारी-बारी नेत्र तरल हुए। अंगार दहके और फिर बुझ भी गए। कई क्षण शिथिल, मौन बैठी रही। फिर सहसा गर्दन उठाकर कहा, “नहीं। मैं वहीं करूंगी, जो मुझे ठीक लगेगा। किसीकी गुलाम नहीं हूँ। अपनी राह पहचानती हूँ। लेकिन अजित...”

“मैं अजित की बात नहीं सोचूंगी...”

“सोचनी पड़ेगी। अजित तुम्हारा पति है। प्राण-रक्षक है। तुम्हारी पुत्री का पिता है। एक बहादुर और निडर साथी है...”

“ओफ़ !” वह तिलमिला उठी, “लोग दूसरों के लिए प्राण क्यों

देते हैं और देते हैं तो उनसे आशा क्यों करते हैं ? क्यों ? क्यों ? क्यों ?”

सहसा द्वार पर आहट हुई । वह कांप उठी । फिर आहट हुई । सोचा—अजित आहट क्यों करता ! कोई मरीज तो नहीं ?...

वह शीघ्रता से उठी । मार्ग में अजित कहीं नहीं था । द्वार पर आहट बराबर हो रही थी । एक क्षण भिभकी, फिर आगे बढ़कर किवाड़ खोल दिये । देखा, कोई पुरुष है । कह रहा है, “अच्छी हो अनीला ?”

“कौन ?” वह सिहर-सिहर आई । “यह स्वर तो...”

“मैं हूँ, अनीला ।”

“गोपाल !”

“हां, वह गोपाल ही तो है ।” पलक मारते जितने समय में उसने आंखें फाड़कर गोपाल को देखा । फिर दीवार थाम ली । लेकिन तुरन्त एक झटके के साथ तेजी से भागती हुई अन्दर चली गई और बच्चों के पास जाकर गिर पड़ी ।

फिर उसे कुछ होश नहीं रहा ।

तीस

गोपाल का पत्र नीलम के नाम—

प्रिय नीलम,

एक दिन के लिए आया था, पर अब रुकना पड़ गया । अजित अनीला से भगडकर कहीं चले गए हैं । स्वतन्त्रता के सही अर्थ कोई नहीं जानता, इसीलिए संघर्ष है । नहीं जानता, कबतक रुकना होगा । दोनों से स्पष्ट बातें कर लेना चाहता हूँ । इसलिए तुम चावला साहब से कह देना कि वह मेरी प्रतीक्षा न करें । यहां का काम मैं कर लूंगा । डॉ० अनीला की आवश्यकता हो तो तार दे देना । प्रभात से मिल चुका हूँ । बहुत आशावान् नहीं हूँ । कानून सरला की रक्षा कर सकता । अब तो वकीलों की स्याह को सफेद करनेवाली तर्कशक्ति ही उसे बचा सकती है । पर नीलम, कभी-कभी लगता है कि जिसे न्याय न बचा सके, उसे

अन्याय से नहीं बचाना चाहिए ।

मैं नहीं चाहता कि उसे कालेपानी की सजा हो। या तो मुक्त हो जाय या फिर फांसी पर झूल जाय। बीच का मार्ग उस निर्दोष के लिए भयंकर दण्ड होगा। हम उस दण्ड के साक्षी नहीं होना चाहते।

जब इलाहाबाद से जाना चाहो, मुझे अनीला के पते पर तार दे देना। मेरे जाने तक रुकी रहोगी तो आभार मानूंगा।

तुम्हारा,
गोपाल

नीलम का पत्र गोपाल के नाम—

गोपालदा,

पत्र आया। जबतक नहीं आओगे, रुकूंगी। आभार का बोझ कुछ तो हल्का होगा ही।

आशा तो बदरिया के बच्चे की तरह है। मर जाने पर भी मनुष्य क्या उसे छोड़ता है! वह भी स्वयं नहीं छूटती। केवल छोड़ती है।

सुभाष आ गए हैं। अनीला जीजी और मालती को मेरा स्नेह पहुंचा देना। जीजी से कहना, संघर्ष स्नेह की चाशनी को गाढ़ा ही करता है। पर कभी-कभी अजीर्ण भी हो रहता है। जीजाजी को प्रणाम कहना। शशि जीजी लखनऊ आने को कह गई थी। सुनीलदा ने उन्हें रंगून बुलाया है। दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में घूम लेना चाहते हैं। अच्छा दादा, प्रणाम!

आपके स्नेह की भिखारिन,
नीलम

पत्र पढ़कर गोपाल ने अनीला को दे दिया। अनीला ने पढ़ लिया तो कई क्षण भीगी रही। मन में जो विषाद घुमड़ता आ रहा था, उसी पर इस पत्र ने चोट की। कई क्षण बाद पूछा, “यह सुभाष कौन है?”

“एक बंगाली कवि।”

“नीलम के क्या सम्बन्ध हैं?”

“घर के बाहरी हिस्से में किराया देने के वादे पर आकर बसा था। अब लगता है, बाहर से धीरे-धीरे वह अन्दर जा बसा है।”

“क्या मतलब ?”

“नीलम से पूछना होगा ।”

अनीला ठगी-सी गोपाल को देखती रह गई । एकाएक समझ न सकी । जब समझी, तब गोपाल वहां नहीं था । पांचवें दिन लौटा और तुरन्त बोला, “अनीला, चलो ।”

“कहां ?” अन्बूझ-सी अनीला ने पूछा ।

“इलाहाबाद । अजित वहीं है ।”

अनीला अब सबकुछ समझ गई । एक क्षण चुप रहकर बोली, “मुझे चलने को कहते हो ?”

“अनीला !” गोपाल जोर से बोला, “मैं आत्महत्या करना नहीं चाहता । जिन्दा रहना चाहता हूं । इतना भी क्या तुम नहीं कर सकती !”

गोपाल को कण्ठावरोध हो आया ।

अनीला कांपकर बोली, “गोपाल !”

“ओह !” गोपाल ने सिर थाम लिया । कई क्षण उसी तरह बैठा रहा, फिर उसी रुंधे कंठ से मन-ही-मन फुसफुसाया, “मैं भी कितना दुर्बल हूं ! प्रतिदिन मांगता हूं ।”

जानता है कि उसने अत्यधिक तेज बात कह दी है । अब वह उतने का अधिकारी नहीं है । इसलिए उसने कुछ देर बाद स्वस्थ होकर कहा, “अनीला, हमें अब अपने को अधिक नहीं ठगना चाहिए । मैं तुमसे बराबर प्रेम करता रहा हूं, करता भी रहूंगा । प्रेम हो तो शरीर कोई बहुत मायने नहीं रखता, बल्कि मैं तो कहूंगा कि वह प्रेम के मार्ग में बाधा है । फिर भी तुम आना चाहोगी तो मैं सदा स्वागत करूंगा, लेकिन प्रश्न यह है कि स्वतन्त्रता और अधिकार के नाम पर क्या मानवता की अर्थी निकालनी ही पड़ेगी ? तनिक-सा मनमुटाव होने पर क्या अलग ही होना होगा ?”

गोपाल जितनी देर बोलता रहा उतनी देर अनीला के चेहरे पर दृष्टि गड़ाये रहा । वह भाव-विह्वल सुनती रही । जब मौन हो गया तो अनीला ने कहा, “बात इतनी ही न हो तो...”

“तो...तो,” एक क्षण झिझककर गोपाल बोला, “सवाल पर दूसरे

पहलू से भी विचार करना होगा, अनीला !”

“कौन-सा ?”

“क्या तुम अजित से घृणा करती हो ?”

अनीला सहसा कांप उठी। एकाएक जवाब न सूझा, पर उतनी ही देर में उसका अन्तर विद्रोह से भर आया। वह क्षण उसे युग-जितना लगा और उसने तेजी में कहा, “नहीं।”

“तो फिर उठो और मेरे साथ चलो।”

“लेकिन सुनो तो, घृणा नहीं है, इसी कारण क्या...”

“जीहां, इसी कारण तुम्हें चलना होगा। गाड़ी जाने में देर नहीं है। बच्चों को तैयार करो। तबतक मैं तांगा लाता हूं।”

और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह चला गया। रात-भर का सफर था। अनीला और बच्चों को सैकंड में सुलाकर आप थर्ड में ऊंधता रहा। बीच में नियम से हर स्टेशन पर उतरकर अनीला के डिब्बे में झांक आता था। जानता था, वह सोयेगी नहीं। अनीला ने एक बार पूछा, “तुम्हें आराम की जगह मिली है ?”

“पूरा आराम है।”

फिर पूछा, “बार-बार क्यों आते हो ?”

गोपाल हँस पड़ा, “पता नहीं।”

“अच्छा, अब सो जाना।”

वह सोया या नहीं, पर सवेरे तक फिर उसे देखने नहीं आया। इलाहाबाद से पहले स्टेशन पर इतना कहा, “तुम्हारे पिताजी आयेंगे। उनके साथ चली जाना।”

अनीला ने पूछा, “और वे कहां हैं ?”

“अनीला, वह जहां रहता है, वह तो विवाद करने की जगह है !”

“मैं वहीं जाऊंगी।”

गोपाल ने चुपचाप पता दे दिया। गाड़ी रुकने पर जब चावलासाहब ने अपनी बेटी को देखा तब उनकी हिडकियां बंध गईं। क्षण-भर के लिए अनीला भी सारे व्यतीत को भूल गई। पर जब काफी रो चुकी, तब उसने आंसू पोछकर विदा मांगी।

चावलासाहब ने पूछा, “घर नहीं चलोगी ?”

“वही तो जा रही हूं।”

“मेरा मतलब, मेरे साथ...”

“नहीं पिताजी, मैं अजित के पास जा रही हूं।”

“पर बेटी...”

“प्रणाम, पिताजी !”

और वह दोनों बच्चों को लेकर चली गई। चावलासाहब अवाक्, अबूझ। गोपाल बोला, “अनीला ने ठीक ही किया है, काकाजी। आपके घर वह अकेली कैसे आ सकती है ? अजित के बिना वह अधूरी है।”

चावलासाहब ने क्षण-भर रुककर गोपाल को देखा, फिर आगे बढ़ गए। दृष्टि उनकी इतनी धुंधली थी कि बार-बार हर किसीसे टकरा जाने के कारण उन्हें अपशब्द सुनने पड़े।

इकतीस

अथक प्रयत्नों के बावजूद सरला नहीं बच सकी। जज ने उसे फांसी की सजा दी थी। हाईकोर्ट ने उसे पुष्ट कर दिया, लेकिन साथ ही राज्य के अधिष्ठाता से दया की प्रार्थना करने का सुझाव भी दिया।

सरला ने दया की प्रार्थना करने से साफ इन्कार कर दिया और जब गोपाल समझाने-बुझाने उसके पास गया, तब वह बोली, “क्या आप समझते हैं कि मैं जी सकूंगी ?”

गोपाल ने कहा, “अनागत की चिन्ता आज ही क्यों हो ? मौत के आने तक जीना ही धर्म है।”

सरला हँस पड़ी, “धर्म क्या अभी बचा है ?”

“धर्म कभी नष्ट नहीं होता।”

“पत्थर का होगा। जिसमें जीवन है, उसे तो नष्ट होना ही है।”

“होने को तो पत्थर भी नष्ट हो जाता है और यों कुछ भी नष्ट नहीं होता, पर अब सवाल नष्ट होने का इतना नहीं है।”

“तो ?”

“कैसे नष्ट होता है, इस बात का है ।”

सरला फिर हँसी, बोली, “इसी बात पर एक रहस्य की बात आप से कहती हूँ । अबतक झूठ ही बोला है । मानती हूँ कि मैं अपने पति की हत्या का कारण हूँ, पर मैंने उसे जहर नहीं दिया था । विश्वास करोगे ?”

गोपाल को सचमुच विश्वास नहीं आया । बोला, “क्या कहती हो ?”

“वही तो बता रही हूँ,” सरला ने कहा, “मैंने उससे कहा था, ‘तू मुझे मारता है सो ठीक है, पर एक बात बता । मैं किसीके साथ भाग गई थी । उसके घर में रही हुई हूँ । मुझे तू कैसे अपने घर में रखे है ?’ उसके पास क्या जवाब था, गाली देने लगा । मैंने फिर कहा, ‘तू गरीब है, बदशक्ल है, बदतमीज है, उसीकी सजा के रूप में खूबसूरत होने पर भी बदचलन मैं तुझे मिली हूँ ! समझा ?’ इसपर वह मुझे पीटने लगा । अचरज है कि मैं भी पीटती रही । इतनी कि जख्मी हो गई, पर अगले दिन मैंने उससे कहा, ‘सुन, मैं तुझसे नफरत करती हू । चाहूँ तो तेरा गला घोट सकती हूँ । तुझसे तिगुनी हूँ ।’ इसपर वह फिर झपटा । मैंने कड़ककर कहा, ‘पीछे हट !’ वह कांप उठा, पर मर्द था न ! फिर तेज होकर लपका । मैंने उसका हाथ पकड़कर मरोड़ दिया । ओह, तब उसका मुँह देखते बनता था । मेरी छाती में जैसे किसीने छुरा भोंक दिया हो । मैंने रोकर कहा, ‘जा !’ वह चला गया ।”

गोपाल चकित, ठगा-सा सुन रहा था । यंत्रवत् बोला, “चला गया ?”

“हां, तब चला गया । फिर लौटा तो बड़ा उदास था । खाना भी नहीं खाया । बहुतेरा कहा, पर नहीं बोला । चुपचाप सो गया । मैं भी सो गई । मुझे अपने ऊपर अत्यधिक ग्लानि हो रही थी, जो मैं उठ रहा था कि इसके चरण पकड़कर जी भरकर रोऊँ, पर मैं सोचती ही रह गई । श्रद्धा मुझमें बची कहां थी, इसीलिए तब ही उठी जब मैंने उसकी कराहट सुनी । चौंककर देखा—वह ऐंठ रहा था !”

“क्या ? वह ऐंठ रहा था ?” गोपाल ने अविश्वास से पूछा ।

“हां, वह ऐंठ रहा था । उसने जहर खा लिया था और जबतक मैं

कुछ समझूँ, वह समाप्त भी हो गया। मेरा छुरा पड़ा रहा गया। उस निरीह, असभ्य और कुरूप ने मेरा दर्प चूर कर दिया।”

गोपाल एकटक सरला को देख रहा था। उसके मौन होते ही बोला, “पर तुमने बयान में...”

“हां, मैंने अपने बयान में स्वीकार किया कि जहर मैंने दिया था।”

“क्यों?”

“नारी से क्यों की बात मत पूछो।”

“नहीं पूछूंगा।”

“अब हस्ताक्षर तो नहीं करवाओगे?”

“नहीं।”

सरला के नयन भर आए। उसने उन्हें मूंद लिया। आंसू उसके गालों पर बह आए। रुंधे कण्ठ से बोली, “अब मैं शान्ति से मरूंगी, पूर्ण शान्ति से।”

लौटकर गोपाल ने नीलम को पत्र लिखा—

“नीलम,

सरला ने दस्तखत नहीं किये। मैंने भी जोर नहीं दिया। न्याय के ढोंग के बाद उसे आत्महत्या करनी पड़ती, इससे अच्छा है कि वह फांसी खाकर मरे। शहादत के पूरे लाभ की वह अधिकारिणी है। कानून में कुछ पूर्णता होती तो मैं उसके पिता को भी न्याय के सामने खड़ा करता और फिर पुगण में जिस रौरव नरक की चर्चा पढ़ी है, उसका इस धरती पर निर्माण करके उस नरपिशाच को उसका निवासी बना देता।

पर हुआ यह कि वह जिंदा है। उसे शरम आती है कि उसकी लड़की हत्यारिणी है। फौलाद का बना है।

नीलम, अब तुम इधर मत आना। सरला को शांति चाहिए। ऐसा न हो कि उसके फौलादी ढाँचे में कहीं कोई दरार पड़ जाय। तब दुःख होगा और शहीद को दुःख होना शहादत का अपमान है। वैसे एक प्रयत्न और कर देखने की बात मन में उठती है। बैरिस्टर हठ कर रहे हैं।

लखनऊ जाने का कोई इरादा नहीं था, पर शशि आ रही है। उसके साथ लखनऊ होता दिल्ली आऊंगा। उसे विदा देनी है न!

तुम्हारे क्या हाल हैं ? सुभाष उमर खैयाम से कम नहीं है, पर नीलम, उस व्यक्ति की आत्मा बड़ी बलवान है। देख चुका हूँ। मां कैसी है ? प्रणाम कहना। सत्येंद्र का एक लंबा पत्र आया था। सुनील का भी। मैं भी अब निकलनेवाला हूँ।

मेरा उपन्यास लगभग पूरा हो गया है। अंतिम अध्याय दिल्ली में पूरा करूंगा, केवल एक दिन की बात है। उस दिन सुभाष गांगुली को साथ रखने की इच्छा है। शशि तो होगी ही। न्याय, अधिकार, मनोविज्ञान, जीवन-दर्शन, इन सबसे ऊब गया हूँ। अब तो मैं निश्छल हृदय की मुक्त हँसी और सरल पर सशक्त विश्वास चाहता हूँ। मुक्त हास्य का स्वामी गांगुली है और विश्वास है शशि के पास, इसीलिए वहां रहने का मोह हो आया है।

तुम्हें संभवतः ईर्ष्या होती होगी कि तुम क्या कुछ भी नहीं दोगी। तुमने मुझे क्या दिया है, उसे तुम नहीं जानतीं। कभी जानोगी, तब समझोगी।

अच्छा, अब तो आ ही रहा हूँ...”

पत्र लिख ही रहा था कि शशि आ गई। बैठी रही। लिख चुका तब बोली, “दादा, तुम भी रंगून चलो।”

“चलूंगा, पर आज नहीं, अभी अपना देश घूम लूँ।”

“और शादी ?”

“पहली लड़की से मुलाकात होते ही शादी कर लूंगा, यह निश्चय है।”

उसके बाद शशि ने नीलम का पत्र गोपाल को दिया। लिखा था—

“दादा से कहना कि मैंने विवाह करने का निश्चय कर लिया है। गांगुली कहता है सिविल मैरिज ऐक्ट से हो। मैं कहती हूँ, ये सब कायदे पुराने हो गए हैं, अब कोई नया तरीका ढूँढना चाहिए। सप्तपदी ने स्त्री-पुरुष के संबंध को बहुत दिन निभाया। अब वह जर्जर हो गई है। गांधी-जी ने भी तो एक प्रणाली निकाली है। बहुत सादा है। कुछ मिनट लगते हैं। मां चाहती है कि कल ही यह काम निबट जाय ! तुम आओगी, गोपालदा भी आयेंगे। लखनऊ से अनीला आयगी और मालो भी।

सत्येंद्र नहीं आ सकेगा । पर खैर, चित्र भेज दूंगी ।

तेरी,
नीलम”

पत्र पढ़कर गोपाल मुस्करा आया । बोला, “शशि, क्या कोई कल्पना कर सकता था कि यह छुई-मुई नीलम एक दिन इतनी शक्ति पा लेगी ? आदमी के अंदर ही सब-कुछ है, केवल उसे इस तथ्य को जानना है । तब उससे शक्तिशाली इस संसार में कोई नहीं है, विधाता भी नहीं ।”

शशि ने जवाब दिया, “सो तो ठीक है दादा, पर यह ज्ञान ही तो म्याऊं का ठौर है । बहुत-से लोग जानते नहीं, जानने का ढोंग करते हैं । उन दंभियों ने तालाब गंदा कर रखा है ।”

गोपाल हँस पड़ा, “तुम जैसे दो-चार ठीक हो जायं तो उस दंभ को भी तलाक दिया जा सकता है । बहरहाल अब चला जाय ।”

“चलो दादा, सबकुछ तैयार है, केवल तुम्हें तांगा लाना है ।”

गोपाल तांगा लाने चला गया ।

बत्तीस

रेल में जागकर एक बार सहसा शशि ने पूछा, “क्यों दादा, जो कुछ हुआ, उससे तुम्हें दर्द तो हुआ होगा ?”

गोपाल लेटा था, उठ बैठा । रेल पूरी गति से दौड़ रही थी । क्षण-भर भी बिना झिझके उसने कहा, “हुआ है, शशि । पर क्यों ?”

“ऐसे ही पूछा था । कभी-कभी मुझे तुम्हारी गति-विधि बड़ी अस्वाभाविक-सी लगी है ।”

वह हँस पड़ा, “स्वयं मुझे भी ऐसा ही लगा है और तब मैं बंधन तोड़ने को छटपटा उठा हूँ । यह सब स्वाभाविक है । पर शशि, स्वभाव ही तो सबकुछ नहीं है । इसलिए मैं उससे लड़ने लगता हूँ । मैं समझता हूँ कि हमें यह लड़ाई सीखनी चाहिए । तुम तो खूब लड़ लेती हो, शशि !”

शशि ने तत्परता से जवाब दिया, “मुझे नहीं मालूम कि मैं किससे लड़ती हूँ और क्यों लड़ती हूँ, या लड़ती भी हूँ। पर जो ठीक समझती हूँ, उसे करने से डरती नहीं।”

“यही तो जड़ की बात है, शशि। इसी सत्य को दुनिया नहीं पचा पाती।”

उसके बाद किसीने कुछ नहीं कहा।

तेतीस

लखनऊ में जब सब लोग अनीला के पास पहुंचे तो पाया कि वह अपने किसी केस में व्यस्त है और नौकर मनोज को लेकर स्कूल गया हुआ है। इसलिए स्वागत का भार अकेले अजित पर आ पड़ा।

जब सब लोग चाय पी रहे थे, तब अनीला लौटी। यद्यपि वह कुछ थकी-सी थी, फिर भी उसका मुख एक आभा से दीप्त था। देखकर गहरी आत्मीयता से मुस्करा उठी। बोली, “आप लोग किधर रास्ता भूल गए?”

गोपाल ने अनसुनी करके कहा, “शशि से मिलो, अनीला!”

अनीला ललककर उधर बढ़ी, बोली, “यह न समझना कि तुम्हें जानती नहीं। इतना जानती हूँ कि तुम्हें भी चकित रह जाना पड़ेगा।”

शशि ने प्यार से कहा, “अक्सर रह जाती हूँ। कोई बड़ी बात नहीं है।”

इसपर सब जोर से हँस पड़े। हँसी रुकी तो अजित बोला, “आओ, तुम भी चाय पियो, अनीला!”

अनीला ने अंदर जाते-जाते कहा, “अभी पीती हूँ, बहुत धन्यवाद! लेकिन तुम तो जाओगे न?”

“हां!” अजित उठकर पीछे-पीछे चला।

“अभी?”

“हां, अभी जाऊंगा। और मेरी राह न देखना। शायद...”

“न-न,” अनीला ने कहा, “यह नहीं, ठीक बताकर जाओ।”

“समझता हूं कि दो दिन में आ जाऊंगा।”

“ठीक है, तीसरा दिन न हो। इस बारे में तुम बड़े गैर-जिम्मेदार हो, समझे !”

वह शरारत से हँसी और फिर उसके पास जाकर धीरे से बोली, “तुम जानते हो, मैं अधिक राह नहीं देख सकती।”

“और मैं भी इतनी सख्ती नहीं सह सकता।”

कहकर फिर दोनों हँसे।

गोपाल मुस्कराकर बोला, “क्यों अजित, हम लोगों के लिए भी नहीं रुकोगे ?”

“नहीं, गोपालदा, मुझे जाना ही पड़ेगा, आप मुझे माफ कर दें।”

“अच्छा !”

“लेकिन आप कहें तो रुक जाऊं।”

“नहीं, काम छोड़ने को तो नहीं कहूंगा।”

“जानता हूं, दादा ! तो आज्ञा लूं।”

और फिर शशि की ओर मुड़ा, “आप बुरा न मानिये। एक-दूसरे के मित्रों के लिए हम शिष्टाचार का ढोंग नहीं बरतते। अनीला की ऐसी ही आज्ञा है और जहां तक मेरा अनुमान है, अनीला को यह सलाह गोपालदा ने दी है।”

अनीला हठात् विद्रूप से बोली, “यह मेरा अपमान है।”

“मैं क्षमा चाहता हूं और आपसे भी, गोपालदा। नमस्ते !”

और वह हँसता-खिलखिलाता चला गया। शशि भी थोड़ी देर बाद अपने काम पर चली गई। अनीला को दवाखाने में काम था, पर जब वह दोपहर के खाने पर लौटी, तब गोपाल अकेला वहां बैठा था। कई क्षण इधर-उधर की बातें करके बोला, “कैसा चलता है ?”

अनीला के मुख पर सहसा सांध्य आकाश के जैसा रक्त चमक आया, किन्तु क्षण-भर के लिए ही। दूसरे ही क्षण उसने दृढ़ स्वर में कहा, “ठीक चलता है।”

पूछने को और कुछ न होने पर गोपाल चुप हो गया। कई क्षण बाद अनीला ने पूछा, “आप क्या कर रहे हैं ?”

“फिलहाल भारत-यात्रा पर निकलने का विचार है। इस बीच बराबर लिखूंगा।”

फिर वही युगों जैसा असह्य मौन। दो क्षण बाद त्रस्त-सी अनीला बोली, “नीलम ठीक है?”

“बहुत ठीक है। गांगुली अच्छा साथी बनेगा।”

“अच्छा साथी?” अनीला ने धीरे-से अविश्वास के स्वर में कहा और फिर एकटक गोपाल को देखने लगी।

लेकिन वह आगे कुछ कहती कि शशि लौट आई।

लौटते वक्त स्टेशन पर गोपाल ने अनीला को पास बुलाकर कहा, “एक बात जो अबतक नहीं पूछी, आज पूछता हूं।”

“क्या बात?”

“मनोज तो ठीक है न?”

अनीला ने गरदन ऊपर करके गोपाल को देखा, फिर एकाएक सिर झुका लिया। बोली, “क्यों? यह क्यों पूछते हो?”

“इसलिए कि...”

“नहीं-नहीं!” अनीला सहसा बोल उठी, “वह ठीक है। सब-कुछ ठीक है।”

गोपाल ने उत्तेजित अनीला का हाथ दबाकर कहा, “जान गया, तो भी इतना कहे रखता हूं कि मैं आज भी निर्मोही नहीं हो सका हूं।”

अनीला ने गोपाल को देखा और सम्मलते हुए कहा, “दादा, मैं केवल नारी ही नहीं, डाक्टरनी भी हूं और डाक्टर...”

और फिर जोर से हँस पड़ी। गोपाल भी हँसकर चुप हो गया। फिर कई क्षण के मौन के बाद अनीला ने कहा, “अब मैं एक बात पूछूँ?”

“पूछो।”

अनीला सहसा मौन हो गई।

“पूछो!”

अनीला और पास आ गई, “पूछती थी, नीलम क्या सचमुच सुभाष से विवाह कर रही है?”

“सुना है, वह कर रही है।”

“लेकिन वह तो...”

गोपाल ने अनीला की ओर देखते हुए कहा, “नीलम की मुझमें अनन्य भक्ति है, विवाह करके मैं उसका अपमान नहीं करना चाहता। मैं उससे विवाह नहीं कर सकता, अनीला।”

न जाने इस स्वर में ऐसा क्या था कि अनीला ने दृष्टि झुका ली। दर्द से हृदय टीस आया। शायद रो पड़ती, पर तभी गार्ड ने अंतिम सीटी दी। दोनों ने एक-दूसरे को तरल प्रणाम किया, मधुर प्रेम से छलकता हुआ प्रणाम। जो मधुर है, वही तो पवित्र है।

और गाड़ी चल पड़ी।

जब वे दिल्ली पहुंचे तो नीलम और सुभाष प्लेटफार्म पर मौजूद थे। गोपाल ने शशि से कहा, “देखो, शशि !”

“क्या ?”

“चंद्र-चकोर।”

“कहां ?”

“वह !”

शशि ने देखा तो प्रसन्न हो आई। बोली, “मुझे ये दोनों बहुत प्रिय हैं, गोपालदा ! सुभाष देखने में जितना अबुद्ध लगता है, है उतना ही प्रबुद्ध।”

“देखो तो दोनों कैसे मुस्करा रहे हैं, मानो विधाता ने दोनों को एक-दूसरे के लिए बनाया है।”

“सचमुच दोनों अति सुंदर हैं। सहसा कौन कह सकता है कि इस कमनीय कलेवर में फौलादी आत्मा का निवास है !”

गाड़ी रुकते-रुकते गोपाल ने कहा, “सौंदर्य की क्या शक्ति से कभी नहीं बनती ?”

“क्यों, खूब बनती है, पर...” इतना ही कह सकी। गाड़ी रुक चुकी थी और नीलम तथा सुभाष तेजी से भीड़ को चीरते हुए उनकी ओर बढ़ रहे थे।

चौतीस

अजित का पत्र गोपाल के नाम—

“गोपालदा,

आपसे इतनी बात हुई, पर कभी मन की बात नहीं कह पाया। कहता कैसे ? आपसे ईर्ष्या जो करता रहा। आपको मार डालने तक का विचार मन में उठा है। अनीला जो मुझसे खिंची थी, उसमें राजनीति गौण थी, मुख्य थे आप। आपसे वह कितना प्रेम करती थी। आज भी करती है, पर... उसपर की बात रहने ही दूंगा और स्वीकार करूंगा कि वह मेरे प्रति पूरी ईमानदार है। और दादा, ईमानदारी और बेईमानी क्या ! सबकुछ सापेक्ष है। स्त्री पुरुष जब देर तक साथ रहते हैं—विशेषकर हमारी परिस्थिति में—तब पास आ जाना स्वाभाविक ही है। हमारे साथ यही हुआ। हमने प्रतिज्ञा की थी कि कभी अलग न होंगे। कभी भारत नहीं जायेंगे।

पर हमें आना पड़ा और अनीला मुझसे दूर हटने लगी। वह कहानी आप जानते हैं। आप यह भी जानते हैं कि वह दुखी है, उसके पास एक बेटा है, जिसकी वह मां है, पर उसका पति उसके बेटे का पिता नहीं है। न जाने कितनी बार यह बात उसके मन में उठती होगी, कितनी बार वह यह सब सोचकर रोती होगी। उसका दिल तड़पता होगा। उसे अपनी घृणा की याद आती होगी। सोचती होगी कि मैं भी उससे घृणा करता हूंगा। दादा, मैंने कभी जान-बूझकर उसे ऐसा समझने का मौका नहीं दिया, पर यह इतना नाजुक मामला है कि जाने-अनजाने जरा-सी ठेस पाकर उसका दिल तड़प उठता होगा।

वह समझदार है, स्वतन्त्र है, पर फिर भी उसे प्रेम चाहिए। हर किसीको चाहिए, फिर वह तो मां है, मनोज की मां। दादा, मुझे लगा था कि मैं उसपर दया कर रहा हूं। मेरे अंदर आग है, पर साथ ही असीम करुणा भी है। उसी करुणा में मानवी प्रेम लय होता है और दादा, तभी वास्तविक प्रेम पैदा होता है। उन दिनों जब आप मुझे खोजते फिर रहे थे, मैंने यह सब जाना और समझा कि मुझे अनीला के पास लौटना होगा। पर एक भिन्नक अभी शेष थी, दर्प और दंभ की भिन्नक। मेरा सौभाग्य

देखिये, तभी आपने मुझे खोज निकाला। आपको देखते ही मैंने आपको मार डालना चाहा था, पर वह सब क्षणिक था, विद्युत्-सा क्षणिक। आपको अमृतसर में ही पहचान गया था। इस बार जब जाना कि आप मेरे पीछे भागते रहे हैं, तब सच दादा, मुझे अपनी वह असीम करुणा और वह मानवीय प्रेम सब सागर के सामने एक क्षुद्र कण के समान लगे।

कई दिन से यह बात मन में चुभ रही थी। आज कहकर उस चुभन से मुक्ति पा रहा हूँ। अनागत की मुझे चिंता नहीं है। आज हम सशक्त हैं और वह शक्ति आपके बलिदान से प्राणवान् है, यह हम कभी नहीं भूलेंगे। प्रणाम !

स्नेही,
अजित”

“पुनश्च :

स्टेशन पर अनीला से आपने मनोज की बात पूछी थी। उसीके जवाब में पत्र लिखा है। जिस दिन उससे घृणा करूंगा, उस दिन अनीला से भी प्रेम न कर सकूंगा। हो सके तो अब हमें भूल जाना। मेरा आशय है कि हमारे लिए अपने कार्यक्रम में बाधा न डालना। हमारा विश्वास करना। करोगे न ?

सोचेंगे, क्या लिखने लगा हूँ। अपने मन का परिचय न दूँ तो छली कहलाऊंगा। न दादा, आपसे छल नहीं करूंगा।

अजित”

“पुनश्च :

एक बात और, सुभाष मेरे दल में आ गया है।

अजित”

उसी क्षण सुभाष के आने की सूचना मिली। कुछ उद्विग्न हो रहा था। बोला, “दादा, एक आवश्यक काम से आया हूँ।”

“काम मुझसे है ?”

“हां !”

“तो कहो !”

“नीलम ने विवाह करने से इंकार कर दिया।”

गोपाल क्षण-भर रुका । फिर बोला, “बिलकुल ?”

“नहीं, वह कहती है, मैं पुरानी विधियों से विवाह नहीं करना चाहती ।”

“ओह, तो वह नई विधि की तलाश में है ।”

“हां दादा, और जबतक वह नहीं मिलती, तबतक हम पति-पत्नी नहीं बन सकते ।”

“क्या खयाल है, कबतक मिल जायगी ?”

“कहती थी, हो सकता है कि इस जीवन में न मिले ।”

“ओह, यह बात है !” कहकर गोपाल खुलकर हँसा । “सुभाष महाशय, बात तो नीलम ने ठीक कही है । एक या अनेक जीवन भी इसके लिए थोड़े हैं । पर मेरा खयाल है, पति-पत्नी बनकर यह खोज की जाय तो अधिक सफलता की आशा है; क्योंकि जो विवाह नहीं करते, वे अपने ही लिए जीना चाहते हैं । इससे मानवता कम होती है, स्वार्थ अधिक होता है । क्यों, ठीक कहता हूँ न, कवि ?”

“यह बात आप उससे कह दीजिये ।”

“तुम ही कह देना, वह समझ जायगी ।”

अगले दिन रजिस्ट्रार के दफ्तर में विवाह के रजिस्टर में हस्ताक्षर करके नीलम और सुभाष बाकायदा पति-पत्नी बन गए । मां और शशि के साथ गोपाल ने भी नीलम की ओर से हस्ताक्षर किये ।

फिर शाम को एक बड़ी पार्टी दी गई । तब हुआ कि वे दोनों भी हवाई जहाज से शशि के साथ कलकत्ते जायं । नीलम ने विरोध किया कि वह गरीब है । पर गोपाल ने जवाब दिया कि वह स्वयं गरीब है, लेकिन पैदल यात्रा से पूर्व एक बार हवा में उड़कर देख लेने से तृष्णा शांत हो जायगी ।

फिर किसीने कोई विरोध नहीं किया ।

पैंतीस

अगले दिन हवाई अड्डे पर गोपाल सबसे पहले पहुंचा। वह विनय-नगर एक मित्र से मिलने गया था, वहीं से घूमता हुआ पहुंच गया। कुछ देर बाद शशि, नीलम, सुभाष, मां और अनेक मित्र आ पहुंचे। धीरे-धीरे अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधि भी वहां इकट्ठे हो गए। सुभाष और नीलम इसी जहाज से कलकत्ते जा रहे थे। इसलिए उस बड़े प्रकोष्ठ में खूब भीड़ हो गई। नीलम ने क्षण-भर के लिए गोपाल को अलग ले जाकर कहा, “दादा, आपका उपन्यास पढ़ गई हूं। मैंने केवल उसका नाम पलटा है।”

“क्या नाम रखा है?”

“तट के बंधन!”

गोपाल मुस्कराया, बोला, “नीलम, तुमने उसका सही अर्थ समझा।”

“समझती कैसे न? हमीं लोगों की कहानी तो है।”

“सच?”

“और क्या झूठ?”

“बस, अब यह नहीं पूछूंगा कि कैसी लगी? मुझे उत्तर मिल गया।”

कहकर उसने नीलम को ऐसे देखा कि उसने लजाकर दृष्टि भुका ली। कहा, “दादा, कहीं भी रहो, मुझे भूलना मत। एक ही दुःख है कि सरला...”

सहसा नीलम को कंठावरोध हो आया। गोपाल का ध्यान दूसरी ओर चला गया था। अभी-अभी जो जहाज उतरा था, उसके यात्री अंदर आ रहे थे। गोपाल ने उधर देखते हुए कहा, “भूलना और याद रखना, ये कोई महत्वपूर्ण बातें नहीं हैं। नीलम, पुराने बंधन तोड़कर आदमी नये बनाता है। शृंखला की इन कड़ियों में ही उसका जीवन उलझा रहता है। महत्व की बात यह है कि वर्तमान के प्रति कृतघ्न न हों। रही सरला की बात...”

और आगे कुछ कहे कि उसने देखा, बैरिस्टर बुधवार उसकी ओर

लपके आ रहे हैं। वह लगभग चीखकर बोला, “आप !”

उल्लसित स्वर में बुधवार ने दूर से ही कहा, “बेटा, मेरी बात पूरी हो गई। सरला को छोड़ने का आदेश मिल गया।”

“क्या ?”

अब वह पास आ गए थे। बोले, “सरला को छोड़ने का हुक्म हो गया। यही बताने हवा से दौड़ा आया हूं।”

नीलम ने सुना तो पागल-सी मां से जाकर लिपट गई, “मां, सरला छूट गई, मां !”

“सरला छूट गई !” मां अविश्वास से बोली।

“हां।”

उस क्षण विदा की वह बेला उल्लास से भर उठी। शशि ने कहा, “गोपालदादा, तुम्हारी यात्रा का मुहूर्त फिर टल गया।”

“नहीं शशि, मुहूर्त तो कभी का हो चुका। वह क्या टलेगा ? यह तो एक पड़ाव और बढ़ गया है, बस। जीने के लिए उलझने चाहिए ही।”

और वह हँस पड़ा।

भीड़ में सबसे आगे मां के साथ वह खड़ा था। सीढ़ी पर सबसे पीछे थी नीलम। सुभाष गले मिलकर भाग गया। शशि ने सदा की भांति निर्द्वन्द्व दूर से ही प्रणाम किया और अन्दर चली गई। नीलम एक बार आई, मां की चरण-रज ली, फिर रेलिंग पर झुके गोपाल की ओर मुड़ी, पर देखा तो वहाँ कोई नहीं था। उधर अंतिम संकेत हुआ। नीलम भागी। शशि ने चीखते हुए कहा, “पगली, अब भी पीछे रहेगी क्या ?”

क्षण-भर में यह सब हो गया। सब अन्दर चले गए।

जहाज उड़ने लगा था, भीड़ छटने लगी। गोपाल मां और बैरिस्टर के साथ तबतक खड़ा रहा, जबतक वह जहाज दूर आकाश की गहराइयों में एक अदृश्य संकेत बनकर न रह गया।

लौटते हुए मां ने सांस लेकर कहा, “आज वह जिंदा होते !”

लेकिन ‘वह’ से उसका किससे अर्थ था, कुछ पता नहीं लगा। इतना ही जाना कि मां बहुत खुश है। उसने कुछ देर बाद फिर पूछा, “गोपाल बेटा, सरला का अब क्या होगा ?”

“सरला जाने !” गोपाल ने हड़ता से उत्तर दिया ।

मां बोली, “मैं कहती थी कि जाने से पहले तू उसे मेरे पास पहुंचाता जा । और यह जो रतिराम का भतीजा है, इसे भी मेरे पास रहने दे । इनके साथ बुढ़ापे में अकेलापन नहीं महसूस होगा ।”

गोपाल ने कृतज्ञ दृष्टि से मां को देखा । फिर हँसकर बोला, “इनके साथ मुझे भी रख लो, तो तुम्हारा अनाथालय पूरा हो जायगा, मां ।”

सब हँस पड़े । हँसते-हँसते मां ने कहा, “अनाथालय क्यों कहता है, पगले ? गृहस्थी कह ।”

गोपाल ने सहसा कोई जवाब नहीं दिया, पर वह उसी संध्या को बैरिस्टर बुधवार के साथ सरला को लेने रवाना हो गया ।



‘मंडल’ द्वारा प्रकाशित प्रमुख साहित्य

आत्मकथा (गांधीजी)	४.००	गांधीजी को श्रद्धांजलि	०.३७
प्रार्थना-प्रवचन (२ भाग)	५.५०	भूदान-यज्ञ	०.२५
गीता माता	४.००	राजघाट की संनिधि में	०.६२
पंद्रह अगस्त के बाद	२.५०	विचार-पोथी	१.००
धर्मनीति	२.००	सर्वोदय का घोषणा-पत्र	०.२५
द० अफ्रीका का सत्याग्रह	३.५०	उपनिषदों का अध्ययन	१.००
मेरे समकालीन	५.००	कुछ पुरानी चिट्ठियां (नेहरू)	१०.००
आत्म-संयम	३.००	इतिहास के महापुरुष (अ.मो.)	१.५०
गीता-बोध	०.५०	मेरी कहानी	१०.००
अनासक्तियोग	०.७५	” (संक्षिप्त)	२.५०
ग्राम-सेवा	०.३७	हिन्दुस्तान की समस्याएं	२.५०
मंगल-प्रभात	०.३७	राष्ट्रपिता	२.००
सर्वोदय	०.५०	राजनीति से दूर	२.००
नीति-धर्म	०.३७	विश्व-इतिहास की झलक	
आश्रमवासियों से	०.४०	(सम्पूर्ण)	२०.००
हमारी मांग	१.००	हिन्दुस्तान की कहानी (संक्षिप्त)	२.५०
एक सत्यवीर की कथा	०.२५	गांधीजी की देन (राजेन्द्रप्रसाद)	१.५०
आत्मकथा (संक्षिप्त)	१.००	आत्मकथा	१२.००
हिंद-स्वराज्य	०.७५	राजाजी की लघु कथाएं	१.५०
अनीति की राह पर	१.००	महाभारत-कथा	५.००
बापू की सीख	०.५०	कुब्जा-सुन्दरी	२.२५
गांधी-शिक्षा (तीन भाग)	०.६२	शिशु-पालन	०.५०
आज का विचार (दो भाग)	०.७४	दशरथनन्दन श्रीराम	२.५०
ब्रह्मचर्य (दो भाग)	१.७५	मैं भूल नहीं सकता (काटजू)	२.५०
गांधीजी ने कहा था (६ भाग)	२.७०	कारावास-कहानी (सु० नै०)	७.५०
शांति-यात्रा (विनोबा)	१.५०	गांधी की कहानी (लुई फिशर)	१.५०
विनोबा के विचार : (२ भाग)	३.००	इंग्लैंड में गांधीजी	१.२५
जीवन और शिक्षण	२.००	बा, बापू और भाई	०.५०
स्थितप्रज्ञ-दर्शन	१.००	गांधी-विचार-दोहन	१.५०
ईशावास्यवृत्ति	०.७५	संत-सुधासार (संक्षिप्त)	६.००
ईशावास्योपनिषद्	०.१२	श्रद्धा-करा	०.७५
सर्वोदय-विचार	१.१२	भागवत-धर्म (ह० उ०)	७.००
स्वराज्य-शास्त्र (विनोबा)	०.५०	मानवता के भरने (मावलंकर)	१.५०
सर्वोदय-संदेश	१.५०	बापू (७० बिड़ला)	२.००

रूप और स्वरूप	०.७५
डायरी के पन्ने	१.००
ध्रुवोपाख्यान	०.३०
स्त्री और पुरुष (टॉल्स्टाय)	१.००
मेरी मुक्ति की कहानी	१.५०
प्रेम में भगवान	२.५०
जीवन-साधना	१.२५
कलवार की करतूत	०.३५
हमारे जमाने की गुलामी	१.००
बुराई कैसे मिटे ?	१.००
बालकों का विवेक	०.५०
हम करें क्या ?	४.००
धर्म और सदाचार	१.२५
अंधेरे में उजाला	१.५०
ईसा की सिखावन	१.००
कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल)	२.५०
लोक-जीवन (काका कालेलकर)	३.५०
साहित्य और जीवन (चतुर्वेदी)	२.००
कब्ज (म० प्र० पोद्दार)	१.००
हिमालय की गोद में	२.००
कहावतों की कहानियां	२.२५
जीवन-संदेश (ख० जिब्रान)	१.२५
अशोक के फूल (ह० प्र० द्विवेदी)	३.००
कांग्रेस का इतिहास (संक्षिप्त)	६.००
सप्तदशी	२.००
रीढ़ की हड्डी	१.५०
अमिट रेखाएं	३.५०
तामिल-वेद (तिरुवल्लुवर)	१.५०
हमारे गांव की कहानी	२.००
खादी द्वारा ग्राम-विकास	०.७५
साग-भाजी की खेती	३.५०
पशुओं का इलाज	०.७५
रामतीर्थ-संदेश (३ भाग)	१.१२
रोटी का सवाल (क्रोपाटकिन)	३.००

नवयुवकों से दो बातें	०.५०
पुरुषार्थ (डॉ० भगवानदास)	६.००
कश्मीर पर हमला	२.००
शिष्टाचार	०.५०
तट के बंधन (विष्णु प्रभाकर)	३.५०
भारतीय संस्कृति (साने गुरुजी)	३.५०
आधुनिक भारत	५.००
फलों की खेती	३.००
मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार ?	०.५०
गांधीजी की छत्रछाया में	१.५०
भागवत-कथा	३.५०
जय अमरनाथ	१.५०
हमारी लोक-कथाएं	१.५०
संस्कृत-साहित्य-सौरभ	
(३६ पुस्तकें) प्रत्येक	०.४०
समाज-विकासमाला	
(१६३ पुस्तकें) प्रत्येक	०.४०
कृषि-ज्ञान-कोष (डॉ० व्यास)	प्रेस में
प्रकाश की बातें	१.५०
ध्वनि की लहरे	१.५०
गरमी की कहानी	१.५०
घरती और आकाश	१.५०
समुद्र के जीव-जंतु	१.५०
नवीन यात्रा (मनोज बसु)	२.५०
रूस में छियालीस दिन	
(यशपाल जैन)	३.००
मैं इनका ऋणी हूं	२.२५
सुभाषित-सप्तशती	२.५०
शारदीया	१.५०
आंसू और मुस्कान	१.००
अमृत की बूंदें	१.००
तूफान और ज्योति	२.५०
प्राकृतिक जीवन की ओर	१.५०
कोई शिकायत नहीं	२.५०

